तिरुमल - तिरुपति देवस्थान की मास - पत्रिका

पिट्सबर्ग (अमेरिका) में विराजमान भगवान बालाजी का मन्दिर
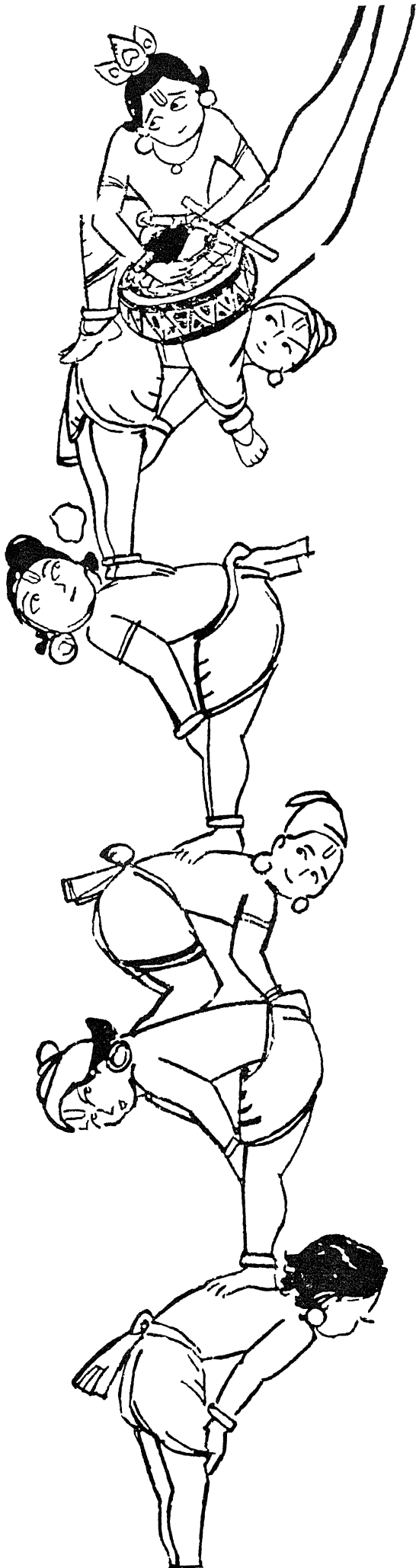
मैया ! मैं नाहीं दधि खायो ।

ख्याल परे ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो ॥

देखि तुहीं सींके पर भाजन ऊँचे घर लटकायो ।

तुम्ही निरखि नन्हे कर अपने मैं कैसे करि पायो ॥

मुख दधि - पोंछि कहत नंदनंदन दोना पीठि दुरायो ।

डारि सांटि मुसुकाइ तबहि गहि सुत को कंठ लगायो ॥

बाल बिनादे .मोद मन मोह्यो भगति:प्रताप देखायो ।

'सूरदास' प्रभु जसुमति के सुख सिव विरंचि बौरायो ॥
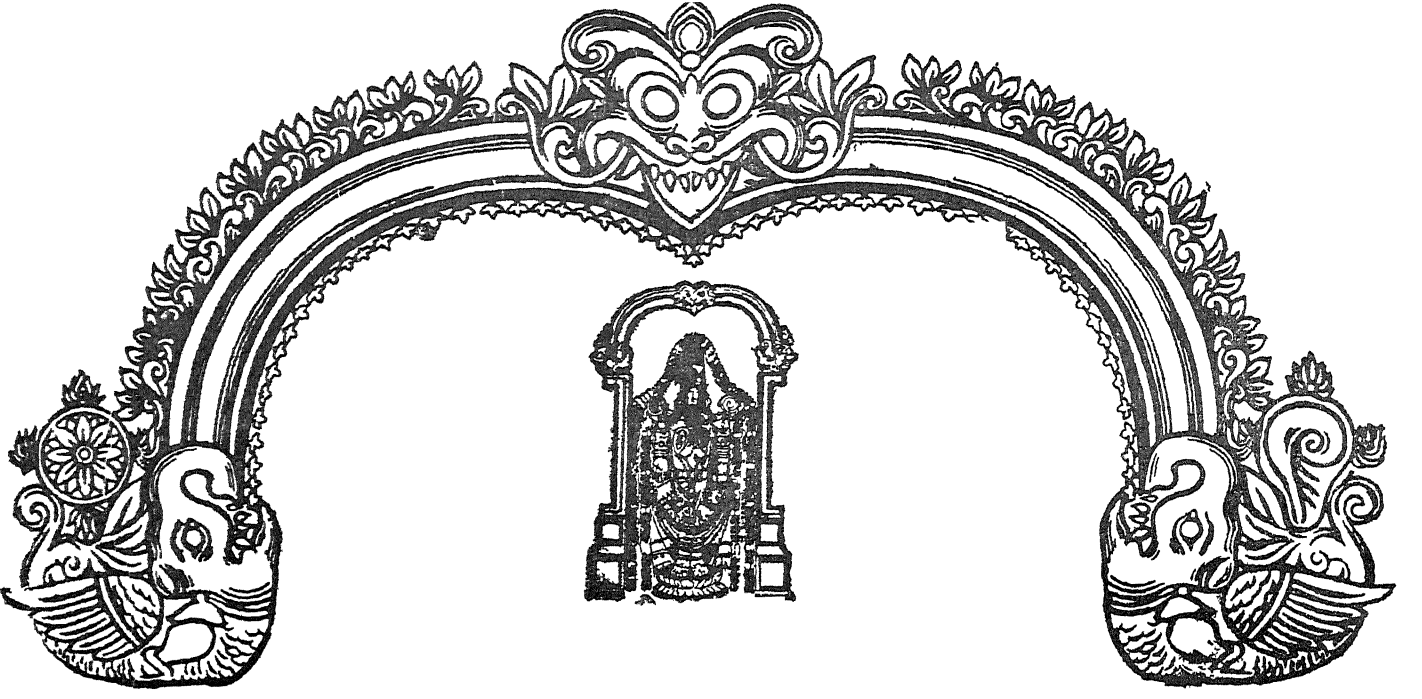
तिरुमल – यात्रियों को सूचनाएँ

भगवान बालाजी के दर्शन

ति. ति देवस्थान को यह विदित हुआ कि कुछ धोखेबाज व्यक्ति यात्रियों से पैसे लेकर भगनान के दर्शन शीघ्र ही करवाने का वादा कर रहे हैं ।

देवस्थान यात्रियों को विदित कराना चाहता है कि जहाँ तक सम्भव हो एक सयत एव क्रम पद्धति में भगवान बालाजी के दर्शन कराने का भरसक प्रयत्न कर रहा है । प्रतिदिन दस हजार से अधिक यात्री भगवान बालाजी का दर्शन करने आते हैं और दर्शन की सुविधा केलिए दिन में १४ घंटे का समय मंदिर का द्वार खोल दिया जाता है जिस में ११ घटे सर्वदर्शन केलिए नियत है । यदि यात्रियों की भीड अधिक हो तो क्लोजड षेड्स से और अधिक न हो तो सुरक्षित महाद्वार से दर्शन का प्रबध किया जा रहा है ।

वे यात्री जो समय के अभाव, अस्वस्थता अथवा अन्य किसी कारणवश क्यू में खडे नही सकते वे प्रति व्यक्ति रु २५/- मूल्य का टिकट खरीद कर मंदिर के अन्दर ही ध्वजस्तंभ के पास से क्यू में शामिल हो सकते है जिस से कि उन को ५ मिनट के अन्दर ही भगवान के दर्शन प्राप्त हो सके ।

यात्रियों से ति ति. देवस्थान का निवेदन है कि वे बाहरी व्यक्तियों की सहायता से दर्शन प्राप्त करने का प्रयत्न न करे । शीघ्र दर्शन की सुविधा केलिए ति. ति. देवस्थान के द्वारा जो उत्तम प्रबंध किये गये हैं, कोई कभी व्यक्ति भगवान का दर्शन उससे शीघ्रतर रवाने में असमर्थ है । अत: कृपया यात्रीगण ऐसे धोखेबाजों की झूठे वायदों से हमेशा सतर्क रहें ।

भगवान के दर्शन प्राप्त करने में जो विलब और प्रतीक्षा करने से जिस सहनशीलता का अभ्यास होता है, वह तो कलियुगवरद श्री वेंकटेश्वर के दर्शन प्राप्त करने केलिए अपेक्षित ही है और वह एक प्रकार की तप: साधना भी है जिस के द्वारा भगवान का सपूर्ण अनुग्रह प्राप्त होता है ।

कार्यनिर्वहणाधिकारी,

ति. ति. देवस्थान तिरुपति.

सप्तगिरि
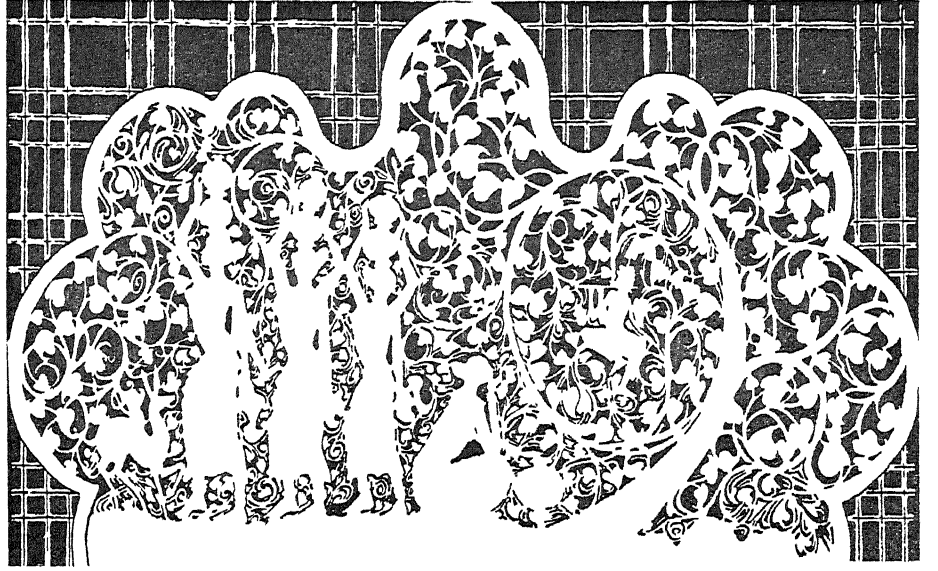
फरिवरी १९७९ वर्ष ९ अंक ९

एक प्रति .... रु. ०–५०
वार्षिक चंदा .... रु. ६–००

गौरव सपादक
श्री पी. .वी आर. के. प्रसाद
आइ. ए यस्,
कार्यनिर्वहणाधिकारी, ति. ति. दे. तिरुपति
दूरवाणी २३२२

सपादक, प्रकाशक
के. सुब्बाराव, एम. ए,
तिरुमल तिरुपति देवस्थान, तिरुपति
दूरवाणी २२५४.

मुद्रक
एम्. विजयकुमाररेड्डी,
मनेजर, टी. टी. डी. प्रेस्, तिरुपति.
दूरवाणी २३४०.

देवाधिदेव सर्वेश्वर की लीलाएँ अगम्य तथा विचित्र होती हैं। भव-बन्धनों को ही सर्वस्व मानकर पारलौकिक चिन्तना से अनभिज्ञ अज्ञानी सांसारिक लोगों को वह जगद्रक्षक भगवान समय समय पर प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप से ज्ञान बोध प्रदान करते रहते हैं। श्री अन्नमाचार्य, जिन्हो ने अपने जीवन कुसुम को भगवान बालाजी के श्री चरणों में समर्पित कर अपनी मुदु मधुर सकीर्तनामृत से भगवान के साक्षात्कार प्राप्त किया, वे उस सर्वेश्वर के अश रूप न हो तो और कौन ?

१५ वी शताब्दी के सुप्रसिद्ध सकीर्तनाचार्य, पद कविता के प्रवर्तक श्री ताल्लपाक अन्नमाचार्य के आध्यात्मिक तथा शृंगार सकीर्तन भारतीय वाङ्मय की अमूल्य विभूति है। ताम्रपत्रों में निक्षिप्त आध्यात्मिक तथा शृंगार सकीर्तन रूपी महोदधि को महान पण्डित, सगीतज्ञ तथा भक्तगण अनेक वर्षो से मथकर उस का सारामृत का आकण्ठपान कर आनदविभोर हो रहे है। लेकिन अधिक पण्डितों तथा सस्थाओं की दृष्टि अभी इस ओर पूर्णत: नही पडी है। वास्तविक विषय तथा श्री अन्नमाचार्य के संकीर्तनामृत को प्राप्त किये हुए भक्ताग्रेसरों का मत यह है कि सकल वेदवेदांगों और आध्यात्मिक ग्रन्थों का सार श्री अन्नमाचार्य के सकीर्तनों में कूट कूट कर भरा हुआ है। श्री अन्नमाचार्य ने भक्ति पारवश्य से अपने सकीर्तनों में उस अनत विश्वात्मा की विचित्र तथा अवर्णनीय लीलाओं को प्रतिबिंबित किया। यदि यह बात कहें तो अतिशयोक्ति न होगी कि विश्वभर के वाङ्मय में श्री अन्नमाचार्य के आध्यात्मिक साहित्य से टक्कर लेनेवाली साहित्य-सुधा अलभ्य है।

ऐसे महान तत्ववेत्ता श्री अन्नमाचार्य के सकीर्तनों को पहले पहल प्रकाश में लाने का श्रेय ति.ति. देवस्थान को मिला है। इस सबध में देवस्थान के कार्यकलापों से पाठकगण परिचित ही हैं। आजकल श्री अन्नमाचार्य और उनके सकीर्तनों का प्रचार व प्रसार करना ति ति. देवस्थान अपना एक प्रमुख कार्य मानकर अपने को गौरवान्विति कर रहा है।

आशा है केवल देवस्थान ही नही सभी शिक्षा सस्थाएँ, प्रकाशन विभाग, संगीत पारंगत और सगीत रसिक आगे बढकर श्री अन्नमाचार्य के कीर्तनों को स्वरबद्ध कर देश के घर घर मे उसे गुंजरित करने का सफल प्रयत्न कर लोगों को भव-बधनो से विमुक्त करें। भरोसा है कि ऐसे लोगों पर भक्तवरद श्री बालाजी की संपूर्ण कृपादृष्टि प्रसारित होगी।

श्री नामदेव

आश्वासन

(गताक से)
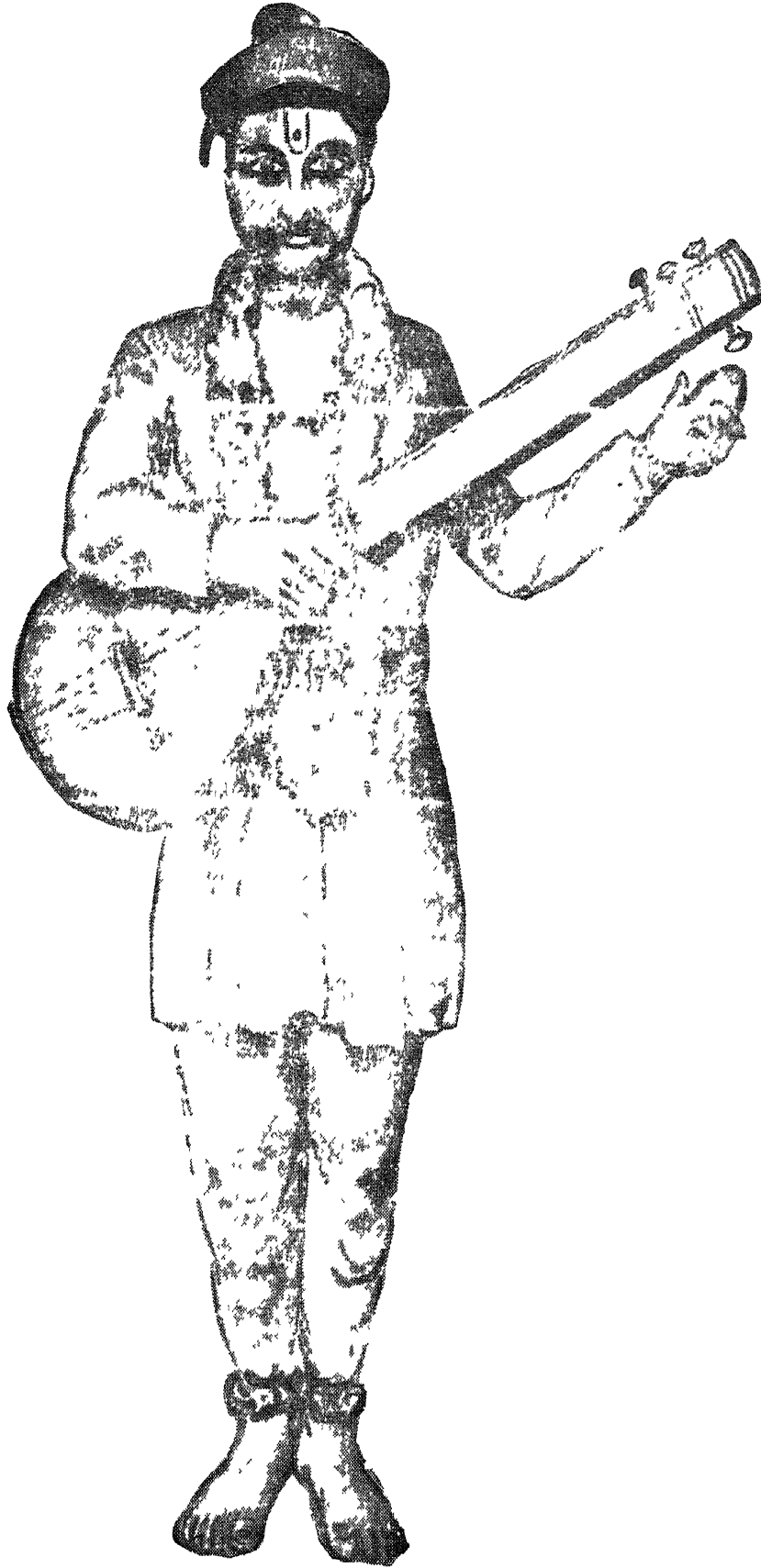
भक्त, भक्ति-पथ का अवलंबन करता है। उसे इस बात का पूर्ण विश्वास होता है कि उस मार्ग पर चलने से उसका उद्धार अवश्य होगा। उसे ईश्वर दर्शन का लाभ होगा। ज्यो ज्यो उसकी साधना मे वृद्धि होती है त्यो त्यो मिलन की उत्सुकता तीव्र होती जाती है। ऐसी अवस्था मे वह भगवान से अपना नाता जोडकर विविध प्रकार से विनती करता है। भगवान को माता कह कर पुकारता है, कभी खीजता है, कभी रूठता है कभी अश्रु बहाता है इत्यादि।

नामदेव, तुकाराम, रामदास, सूरदास सतो ने भगवान को किस तरह पुकारा उसका रसिक वर्णन सुनकर हृदय में भगवत् प्रेम का बीज अंकुरित करो।

नामदेव :—

अ) "डोले शिणले पाहतां वाटुली।"..
हे देव! आपकी प्रतीक्षा करते करते मेरी आँखें थक गई। चिन्ता की आग मे मेरा हृदय जल रहा है। तुम मेरी जननी और जन्म सगिनी हो अतः दौडकर आइए और मेरी रक्षा कीजिए। तुम पक्षिणी हो और मै तुम्हारा अंडज। मै क्षुधा से पीडित हूँ मुझे क्यो भूल गए। तुम हरिणी हो और मै तुम्हारा मृग - छौना हूँ। मै संसारबधन मे फँस गया हूँ। मुझे भव-पाश से छुडाइए। तुम मेरी माँ हो, मै तुम्हारा बालक हूँ। अतः अपने बालक को प्रेमामृत पिलाकर उसकी इच्छा पूर्ण कीजिए।

आ) "बाढवेल का लाविला।"..

इतनी देर क्यो? क्या किसी भक्त ने आपको पकड लिया है? हे विठ्ठल! शीघ्र आइए। पुकारते–पुकारते कठ सूख गया है। मै दसो दिशाओ में आपका मार्ग देख रहा हूँ। मै इस आशा से जीवित हूँ कि मेरे प्राण वल्लभ आएँगे और मुझे अपनी चारो भुजाओ से आलिगन देंगे। इस ध्यान में नामदेव के शरीर पर रोमाच हो आया और वह पृथ्वी पर लोट गया।

श्री आनन्द मोहन, एम. ए.
हैदराबाद

इ) "येई वो कृपावते अनाथांचे नाथे।"

हे अनाथो के नाथ! आइए और शीघ्र मेरी भव-व्यथा दूर कीजिए। मैं भूखा बालक हूँ, आप कृपालु माता है। आप चैतन्य हैं, मैं देह हूँ। आप अन्न हैं, मैं भूखा हूँ। आप जल हैं, मैं प्यासा हूँ। आप चन्द्र है तो मै चकोर हूँ। आप सागर है तो मै सरिता हूँ। आप दाता है तो मै याचक हूँ। आप पूर्ण कनक कुभ है तो मै धन लोभी हूँ। आप जल है तो मैं जल में रहनेवाला जीव मगर हूँ। आप मेघ है तो मै चातक हूँ। आप बोध है तो मैं प्रवृत्ति हूँ। आप भरपूर नद है तो मैं शुष्क नदी। आप तारक है तो मै दोषी हूँ। आप नायक है तो मै भृत्यु हूँ। आप प्रजापालक हैं तो मै प्रजा हूँ। आप हरिणी है तो मै आप का मृग - छौना हूँ। आप पक्षिणी है तो मै अडज हूँ। आप माता है तो मैं आपका बालक हूँ। आप ध्येय है तो मै ध्यान हूँ। आप भज्य है तो मै भक्त हूँ। आप आश्रय है तो मैं आश्रित हूँ। हे प्रभु! आपके मेरे ऐसे अनेक सबन्ध हैं। भक्तो के हृदय में बिहार करने वाले श्रीरग! शीघ्र आइए और नामदेव को प्रेमामृत पिलाइए। हे लक्ष्मीपति! हे पाडुरंग! मेरी रक्षा कीजिए।

नामदेव ने इसी प्रकार के उद्गार अनेक अभगो में निकाले है यथा—

१) वत्सा कारणे मोहालूं गाटा
२) विट्ठल माउली कृपेची कोवली
३) तूं माझी माउली भी वो तुझा तान्हा

तुकाराम :

तुकाराम ने भी इसी आशय का वर्णन किया है—

"बाट्ली पाहता शिणले डोळे"

हे पांडुरंग! आपकी प्रतीक्षा करते करते मेरे नेत्र थक गए हैं। अब आप अपने चरणों के दर्शन मुझे कब देंगे। आप माता के समान कृपालु हैं—वह मुझे मालूम है, फिर आपने मुझे क्यो त्याग दिया है अथवा किसी दूसरे को सौंप दिया है। आपका हृदय मेरे लिए इतना कठोर क्यो हो गया है?

नामदेव और तुकाराम के इन अभंगो मे न केवल भाव साम्य है वरन शब्द साम्य भी है।

रामदास :—

समर्थाचिया सेवका वक्र पाहे
असासर्वं भूमडली कोण आहे?

१. कौन है विश्व में ऐसा नर साहसी
राम के भक्त को वक्र दृष्टि दिखाए?
२. त्रिलोक में बिदित है 'रामदासाभिमानी'
क्या उपेक्षा करेंगे वे अपने दास की?
३. मुक्त किया देवों को जिन्होंने रावण के बधनों से
वे राम कैसे उपेक्षा करेंगे अपने जनों की!
४. अहिल्य-शिला को पद रज से स्पर्श कर
राम ने बना दिया उसे दिव्य-नारी।
५. किया जिन्होंने निज दोनों दासों को चिरंजीवी
कैसे उपेक्षा करेंगे वे 'रामदास' की?
६. 'भक्त भार उठाने की प्रतिज्ञा की है' राम ने
अज्ञानी मानव मन विश्वास न करता इस वचन ने

(पद्यानुवाद)

सूरदास :—

"अपने कों को न आदर देइ?"

अ) हे प्रभो! मै आपका हूँ, इसलिए आपकी कृपा का पात्र हूँ। यद्यपि बालक कोटि अपराध करता है तथापि उसकी माता उधर ध्यान नही देती। जिस वेल को पृथ्वी रस पिलाती रहती है वह हरी भरी बनी रहती है कभी सूखती अथवा जलती नहीं। भगवान शंकर ने आपके ही भरोसे पर रत्नो को त्याग कर विष को अपने कंठ में धारण कर दिया। क्या यह संभव है कि माता के जीते जी उसका पुत्र बकरी के गले के थनो को पीकर मातृ-स्तनो से विरहित हो बिना दूध पिए मर जाए? सूरदास कहते हैं कि यद्यपि मै महा

(शेष पृष्ठ ३६ पर)

एक निवेदन

१५ वी शताब्दी के वाग्गेयकार, सप्तगिरीश्वर श्री बालाजी के अनन्य भक्त श्री ताल्लपाक अन्नमाचार्य ने भगवान वेंकटेश्वर के अध्यात्मिक तथा शृंगार पक्षों का करीब ३२,००० कीर्तनों मे वर्णन किया। तिरुपति में उन की स्मृति में ति. ति. देवस्थान ने रु. ४५ लाख खर्च से श्री अन्नमाचार्य कलामदिर का निर्माण किया है। इस भवन का प्रारंभोत्सव २७, दिसबर '७४ को किया गया।

आजकल इस मदिर मे आध्यात्मिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक कार्यक्रम सफलतापूर्वक प्रतिदिन चलते रहते हैं। एक प्रकार यह मदिर धार्मिक जिज्ञासुओं की प्यास बुझता है। हाल हीं में हिन्दू धर्म प्रतिष्ठानम् का कार्यालय भी तिरुमल से तिरुपति के इस मदिर में स्थानान्तरित किया गया है। ति. ति देवस्थान ने श्री अन्नमाचार्य कलामदिर में एक नये ग्रन्थालय का उद्घाटन भी किया है। सभी परोपकार परायण लोगों से निवेदन है कि हिन्दू धर्म तथा भारतीय सस्कृति से संबंधित ग्रन्थ तथा पत्रिकाएँ इस ग्रन्थालय को दान में दे।

आप का यह उदार दान केवल सामाजिक सेवा ही नहीं बल्कि भगवान बालाजी के प्रति के गयी सेवा भी होगी।

—कार्यनिर्वहणाधिकारी, ति ति. देवस्थान, तिरुपति.

प्राचीन बृहद्भारत एवं वैष्णवभक्ति

ईसवी सन् के प्रारंभ से कांबोज में स्थित भारतीय साम्राज्यों के बारे में हम पढ चुके हैं। आजकल हिन्दू चीन का जो अन्नाम राज्य है वह पहले चंपाराज्य कहलाता था। चम्पा के ओकन्ह नामक गाँव के पास जिस पल्लव लिपि का शिलालेख मिला है, उसमें लिखा गया है कि वहाँ श्री मारवंशी राजा और फत्रंग में पाण्डुरंग-वशी राजा राज करते थे। दसवी शती में चम्पा राज्य पर अन्नामियों का आक्रमण हुआ तो चम्पा के राजा हरिवर्म ने विजय (बिन्ह दिन्ह) को अपनी राजधानी बना लिया।

सन् ६५८ ईसवी में ब्रह्मदेश में मीनम् की मुखज भूमि में द्वारावती, ऐरावती नदी के पास श्रीक्षेत्र, ६८० ईसवी में मलय का श्री विजय ७५० ईसवी में जावा में शैलेन्द्र आदि राज्य भारतीयों से स्थापित हुए थे। पन्द्रहवीं शती तक सयाम् में प्रसिद्ध सुखोदय और सज्जनालय नामक हिन्दू राज्यों के गुप्त एवं पल्लव शिल्पों के अवशेष राजबुरी, चान्त-बुरी और खेडा में सरक्षित हैं। अयुतिया (अयोध्या) के पौराणिक देवी, देवताओं और नरसिंह की मूर्तियाँ वियनस्त्रा के विष्णु और जया के लोकेश्वर की प्रतिमाए बाँगकाक के राष्ट्रीय पुस्तकाल्यों में सरक्षित हैं।

यह खेद की बात है कि सहस्रों वर्षों से ये सभी देश जो बृहद्भारत के ही अंश थे वे गत तीन-चार शताब्दियों से क्रमेण भारत से दूर होते जा रहे है।

जब अशोक मगधराज्य का सम्राट था तब कपिलवस्तु का अभिराज ब्रह्मदेश का राजा था। ईसवी सन् की पहली शती में

प्रोम् और थाटन में श्रीक्षेत्र और विष्णुनगर नामक भारतीय उपनिवेश वैदिक एवं बौद्ध धर्म के केन्द्र थे। पॉचवी शती में वहाँ निर्मित वैष्णव एवं शैव मन्दिरों और बुद्धस्तूपों के अवशेष हैं। हलौंग गॅूरा के पास नौवी शती में

डॉ एस. वेणुगोपालाचार्य,
माण्ड्य (कर्नाटक)

निर्मित वैष्णवनाथ मन्दिर के दशावतार शिल्प के अवशेष भी उपलब्ध है। बर्मीयो में मेले, विवाह, श्राद्ध आदि के ममय जातकों तथा रामायण की विशिष्ट घटनाओं को छाया-नाटकों मे प्रदर्शित करने की रूढि आजकल तक प्रचलित है। उन्नीसवीं शती में बर्मा ब्रिटिशों के वश में आया। तब तक वहाँ के राजाओं और नगरों के दो दो नाम होते थे, एक सस्कृत का और दूसरा बर्मी भाषा का। अरिमर्दनपुर, हंसवती, सुधर्मवती आदि नगरों अनोरथ, जयताङ्क और नरपतिसेतु आदि नगरों के नाम इनके उदाहरण हैं।

गंगा, ब्रह्मपुत्र, ऐरावती, मागंगा (मीकांग) आदि नदियों और उनके पास की घाटियों द्वारा उत्तर भारत से हिन्दू, चीन, मलय, चम्पों काबोज, श्री विजय आदि दक्षिणपूर्व एशिया के राज्यो के लिये भूमार्ग थे। विजयनगर साम्राज्य की अवनति तक ताम्रलिपि गोपाल पुर' मचलीपत्तन, गूडूर, कोच्चि, शूपरिक आदि वन्दरगाहों से नावों तथा जहाजों में उन देशों और शान्त सागर के द्वीप द्वीपान्तरों से व्यापार और सस्कृति का आदान-प्रदान होता था। पन्द्रहवी शती से मुसलमानों और उन्नीसवीं शती से ऐरोप्यों के आक्रमणों के कारण उन देशों में हिन्दू राजनीतिक साम्राज्य नष्टभ्रष्ट हुए किन्तु सांस्कृतिक प्रभाव मिट न सके। इन्डोनेशिया और मेलेशिया के अधिकांश निवासी मुसलमान और फिलिप्पैन्स के लोग ईसाई बन गये तो भी उन में हिन्दू सस्कार यद्यपि दिखायी देते हैं। मलेशिया के चरित्रकार फे कूपर कोल ने अपनी पुस्तक द पीपल्स आफ मलेशिया (पुष्ट २१) में लिखा है कि उन्नीसवीं शती मे भी सुमात्रा के साथ तमिल की जानकारी के बिना व्यापार व्यवहार करना अतीव कठिन था।

वाल्मीकि रामायण में किष्किन्धा काण्ड में सात राज्यों से सुशोभित सुमात्रा और जावा द्वीप सूचित हैं।

(शेष पृष्ठ ३३ पर)

तिरुमल-यात्रियों को सूचनाएँ (केशसमर्पण)

केश समर्पण करने का रहस्य मानव के संपूर्ण अहंभाव को छोडकर उस मूल विराट की शरण में विनीत भावना से अपने को समर्पित करना ही है। हमारे यहाँ केश समर्पण इसलिए एक प्रचलित प्रथा है।

लेकिन पारंपरिक एवं सांप्रदायिक पद्धति में भगवान को केश समर्पण करने से ही मनौती पूरी होगी। यात्रियों की इस प्रमुख मनौती को पूर्ण करने केलिए देवस्थान ने अनेक कल्याण कट्टाओं का प्रबंध किया है। यह विषय विशेष रूप से कहने की आवश्यकता नहीं है कि अनधिकारी नाइयों से अन्य जगह सिरमुण्डन कराने से पवित्रता नहीं रहेगी और भक्त की मनौती भी पूरी नहीं होगी। देवस्थान के नियमित नाइयों से सिर मुण्डन करवाने से ही वे केश भगवान को समर्पित किये जायगे।

इसलिए यात्रियों से निवेदन है कि वे केवल देवस्थान के कल्याण कट्टाओ में ही अपने केश समर्पण करें जहाँ पर अनेक अनुभवी नाई रहते हैं और जिस के नजदीक ही नहाने केलिए नियत शुल्क चुकाने पर गरम पानी देने की व्यवस्था भी है। जो यात्री केश समर्पण काटेज में ही करवाना चाहते हैं, वे देवस्थान के द्वारा इस का प्रबंध कर सकते है।

केश समर्पण केलिए उचित दर पर कल्याणकट्टाएँ तथा काटैजो के पास टिकट बेचे जाते हैं। नाइयों को अलग रूप से पैसे देने की आवश्यकता नहीं है।

कुछ धोखेबाजे व्यक्ति सिर मुण्डन का कम शुल्क लेकर, भगवान के दर्शन शीघ्र ही करवाने के वायदे करके यात्रियों को अनधिकारी नाइयो के पास ले जा रहे है।

यात्रियों से निवेदन है कि देवस्थान के कल्याणकट्टाओ को छोडकर अन्य जगह सिर मुण्डन न करवावें। ऐसा करवाने से वे केश भगवान को समर्पित नही समझे जायेंगे और यात्रियों की मनौतियाँ भी पूरी नहीं होंगी। बालाजी के शीघ्र दर्शन की सुविधा के लिए ति. ति देवस्थान के द्वारा जो उत्तम प्रबंध किये गये है, कोई भी व्यक्ति भगवान का दर्शन से शीघ्रतर करवाने में असमर्थ है।

कार्यनिर्वहणाधिकारी,
ति. ति देवस्थान, तिरुपति.

भारतीय सामाजिक दर्शन

डा० एम्. संगमेशम्, एम्.ए,पी-एच.डी
तिरुपति.

हिन्दू सामाजिक दर्शन अपने में लौकिक, पारलौकिक भौतिक, आध्यात्मिक, इहऔर पर, सबको समेट कर बना है। इसका आधार विश्वजनीन धर्म है, जिसे अभ्युदयनिश्रेयसकारी बताया गया है। अभ्युदय इस लोक में सुख से तात्पर्य रखता है तो निश्रेयस परलोक के सुख से। हिन्दू दार्शनिकों के मत में लौकिक और परलौकिक का अंतर आदमी के धर्म के अनुसार, अथवा उसके धर्माचरण के अनुसार कम या अधिक होता है। इनके बीच की विभाजक रेखा अक्षुण्ण या अपरिहार्य नहीं है। दार्शनिकों के मत में आदमी और देवता में परस्पर आवागमन व रूपांतरण का संबंध-सा निश्चित है। गीता में भी कहा गया है कि "देवान् भावयातानेन ते देवा भावयंतु व:"।

परस्परं भावायंतु: सद्य: परमवाप्स्यथ॥ ३-११

ये दोनों एक इकाई बनते है। इसीमें आत्मा का अक्षुण प्रसार माना जाता है, जिसका साक्षात्कार ही आदमी का चरम लक्ष्य समझा जाता है। क्योंकि वैसे साक्षात्कार का ही फल जन्म-मरण के चक्र से विमुक्ति बताया गया है। "आत्मा वा अरे द्रष्टव्यो, मंतव्यो निधिध्यासितव्य:," "आत्मसंस्थो अमृतत्वमेति", इत्यादि उपनिषद् वाक्यों का तात्पर्य इसी से है। अत: इस लक्ष्य की सिद्धि केलिए मानव (और देवों) को सृष्टि के नियम-निबंधों के अनुसार चलना पडता है। इन्हीं नियम-निबंधों के अंदर, इनके अनुसार चलता हुआ ही आदमी अपने चरम लक्ष्य को, जो आध्यात्मिक है, प्राप्त कर सकता है।

दर्शन का अर्थ इस तथ्य को जानना, दर्शना और अनुभव करना है कि यह भौतिक जतग उसके बाह्याभ्यंतरवर्ती परमात्मा का अंशभूत है। अत: वही सबसे उत्कृष्ट और उत्तम ज्ञान है, जो आदमी को अपने से भिन्न और अपने से बाहर के सभी को अपना सा जानने, मानने और देखने तथा उन सभी से आध्यात्मिक एकता के तथ्य को अनुभव करने में सहायक बनता है और जिससे वह बहुत्व में एकत्व का दर्शन कर सकता है। आदमी का सामाजिक अस्तित्व उसी एकता को अनुभव करने का साधन है, जो फिर अपने में इससे भी अधिक उत्तम लक्ष्य याने मोक्ष अथवा मुक्ति का साधन बनता है। मोक्ष पाना आदमी का सहज स्वाभाविक लक्ष्य ही नहीं, वरन् लक्षण भी है। किंतु आदमी को सामाजिक स्तर पर ही उसके लिए साधना करनी है। समाज में रहकर शारीरिक, मानसिक एव सामाजिक कर्तव्यों को, जिनको पुरुषार्थ रूप में बताया गया है, पूरी तरह निभाये बिना आदमी मोक्ष को प्राप्त नहीं हो सकता। इसी लक्ष्य से पुरुषार्थ-चतुष्टय का सिद्धांत निर्मित हुआ है।

धर्म की कल्पना का मूल वेदो में वर्णित ऋत से है। वेदों में ऋत सष्टिक्रम तथा वैयक्तिक व सामाजिक प्रक्रियाओं का मूल आधार-सूत्र कहकर वर्णित है। वेदों में धर्म को आचार, नीति, विधि, नियम और सत्कार्याचरण के अर्थ में व्यवहृत किया गया है। धरनेवाला तत्व ही धर्म है, जो लौकिक और पारलौकिक, जीव और सभी को धरे रहता है; अर्थात् वह सभी का धारण करता है। महाभारत (कर्ण ६९-५८) के अनुसार धर्म उसीको कहते है जो सबको धरता है, बचाये रखता है और मिलाकर बांधता है। वह प्रजा को धरकर रक्षा करता है। इस तरह धर्म लोगों को वैयक्तिक और सामाजिक तथा सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक सभी क्षेत्रों में धरे रहता है। वह समाज को स्थिरता प्रदान करता है, व्यक्ति को समाज से मिलाये रखता है और उसके मानसिक एवं नैतिक आवश्यकताओं को समाज के अंदर रहते प्राप्त करने में सहायक बनता है।

आदमी का जीवन अशाश्वत है। किंतु उसकी आत्मा शाश्वत है। शाश्वत आत्मा का शाश्वत आनंद उस शाश्वत धर्म से ही संभव है, जो सार्वकालिक, सार्वभौमिक एवं सार्वजनीन सत्य है। उसीको मानव धर्म या साधारण धर्म कहा गया है, जो धृति क्षमा, आत्म-संयमन, अलोभ, शौच, इंद्रिय-निग्रह, ज्ञान, सत्य और अक्रोध जैसे लक्षणों वाला होता है।[1] इस तरह धर्म आदमी को सदुपदेश, संयमन, सद्विद्या एवं सदाचार का मार्ग दिखलानेवाला तत्व है। इसी से स्फूर्ति व बल पाकर आदमी उन्नतोन्नत स्थितियों में से गुजरता हुआ अंत में देवता बन सकता है। धर्म आदमी तथा समाज दोनों को संस्कृत, सभ्य, संयमित एवं अभ्युदय-नि:श्रेयस का अधिकारी बनाता है। इसका सामूहिक फल है, संस्कृति और सद्धर्म का (पुरुषार्थ प्राप्ति का) इतिहास। देश-काल-सापेक्ष होकर मानव और धर्म परस्पर धारण-आचरण से आगें बढते हैं और अवसर पड़ने पर धर्म की रक्षा के लिए या तो राजा या अवतार-पुरुष कटिबद्ध व कर्मरत होकर तद्द्वारा आदमी और समाज की रक्षा करता है। क्योंकि धर्म हानि से क्षति और धर्म-रक्षा से रक्षण होते है।[2]

मानव धर्म और स्वधर्म का समन्वय कर लेना चाहिए। गुण, श्रम, वर्ण संस्कार, आश्रम, देश और काल के आधार पर स्वधर्म का निर्माण होता है। असाधारण परिस्थितियों में, जैसे युद्ध, अकाल आदि में आदमी अपने स्वधर्म को छोडकर आपद्धर्म की शरण ले सकता है। धर्म-

भारतीय सामाजिक दर्शन

डा० एम्. संगमेशम्, एम्.ए.,पी-एच.डी.
तिरुपति.

हिन्दू सामाजिक दर्शन अपने में लौकिक, पारलौकिक भौतिक, आध्यात्मिक, इहऔर पर, सबको समेट कर बना है। इसका आधार विश्वजनीन धर्म है, जिसे अभ्युदयनिश्श्रेयसकारी बताया गया है। अभ्युदय इस लोक में सुख से तात्पर्य रखता है तो निश्श्रेयस परलोक के सुख से। हिन्दू दार्शनिकों के मत में लौकिक और परलौकिक का अंतर आदमी के धर्म के अनुसार, अथवा उसके धर्माचरण के अनुसार कम या अधिक होता है। इनके बीच की विभाजक रेखा अक्षुण्ण या अपरिहार्य नहीं है। दार्शनिको के मत मे आदमी और देवता मे परस्वर आवागमन व रूपांतरण का संबंध-सा निश्चित है। गीता में भी कहा गया है कि "देवान् भावयातानेन ते देवा भावयंतु व "।

परस्परं भावायंतुः सद्यः परमवाप्स्यथ ॥ ३-११

ये दोनों एक इकाई बनते है। इसीमें आत्मा का अक्षुण प्रसार माना जाता है, जिसका साक्षात्कार ही आदमी का चरम लक्ष्य समझा जाता है। क्योंकि वैसे साक्षात्कार का ही फल जन्म-मरण के चक्र से विमुक्ति बताया गया है। "आत्मा वा अरे द्रष्टव्यो, मंतव्यो निधिध्यासितव्यः," "आत्मसंस्थो अमृतत्वमेति", इत्यादि उपनिषद् वाक्यों का तात्पर्य इसी से है। अतः इस लक्ष्य की सिद्धि केलिए मानव (और देवों) को सृष्टि के नियम-निबंधों के अनुसार चलना पडता है। इन्हीं नियम-निबंधों के अंदर, इनके अनुसार चलता हुआ ही आदमी अपने चरम लक्ष्य को, जो आध्यात्मिक है, प्राप्त कर सकता है।

दर्शन का अर्थ इस तथ्य को जानना, दर्शना और अनुभव करना है कि यह भौतिक जतग उसके बाह्याभ्यंतरवर्ती परमात्मा का अंशभूत है। अतः वही सबसे उत्कृष्ट और उत्तम ज्ञान है, जो आदमी को अपने से भिन्न और अपने से बाहर के सभी को अपना सा जानने, मानने और देखने तथा उन सभी से आध्यात्मिक एकता के तथ्य को अनुभव करने में सहायक बनता है और जिससे वह बहुत्व मे एकत्व का दर्शन कर सकता है। आदमी का सामाजिक अस्तित्व उसी एकता को अनुभव करने का साधन है, जो फिर अपने में इससे भी अधिक उत्तम लक्ष्य याने मोक्ष अथवा मुक्ति का साधन बनता है। मोक्ष पाना आदमी का सहज स्वाभाविक लक्ष्य ही नहीं, वरन् लक्षण भी है। किंतु आदमी को सामाजिक स्तर पर ही उसके लिए साधना करनी है। समाज मे रहकर शारीरिक, मानसिक एव सामाजिक कर्तव्यो को, जिनको पुरुषार्थ रूप में बताया गया है, पूरी तरह निभाये बिना आदमी मोक्ष को प्राप्त नही हो सकता। इसी लक्ष्य से पुरुषार्थ-चतुष्टय का सिद्धांत निर्मित हुआ है।

धर्म की कल्पना का मूल वेदो में वर्णित ऋत से है। वेदों में ऋत सष्टिक्रम तथा वैयक्तिक व सामाजिक प्रक्रियाओं का मूल आधार-सूत्र कहकर वर्णित है। वेदों में धर्म को आचार, नीति, विधि, नियम और सत्कार्याचरण के अर्थ में व्यवहृत किया गया है। धरनेवाला तत्व ही धर्म है, जो लौकिक और पारलौकिक, जीव और सभी को धरे रहता है; अर्थात् वह सभी का धारण करता है। महाभारत (कर्ण ६९-५८) के अनुसार धर्म उसीको कहते है जो सबको धरता है, बचाये रखता है और मिलाकर बांधता है। वह प्रजा को धरकर रक्षा करता है। इस तरह धर्म लोगों को वैयक्तिक और सामाजिक तथा सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक सभी क्षेत्रो में धरे रहता है। वह समाज को स्थिरता प्रदान करता है, व्यक्ति को समाज से मिलाये रखता है और उसके मानसिक एवं नैतिक आवश्यकताओ को समाज के अंदर रहते प्राप्त करने में सहायक बनता है।

आदमी का जीवन अशाश्वत है। किंतु उसकी आत्मा शाश्वत है। शाश्वत आत्मा का शाश्वत आनंद उस शाश्वत धर्म से ही संभव है, जो सार्वकालिक, सार्वभौमिक एवं सार्वजनीन सत्य है। उसीको मानव धर्म या साधारण धर्म कहा गया है, जो धृति क्षमा, आत्म-संयमन, अलोभ, शौच, इंद्रिय-निग्रह, ज्ञान, सत्य और अक्रोध जैसे लक्षणों वाला होता है।[1] इस तरह धर्म आदमी को सदुपदेश, सयमन, सद्विद्या एवं सदाचार का मार्ग दिखलानेवाला तत्व है। इसी से स्फूर्ति व बल पाकर आदमी उन्नतोन्नत स्थितियों मे से गुजरता हुआ अंत में देवता बन सकता है। धर्म आदमी तथा समाज दोनों को संस्कृत, सभ्य, संयमित एवं अभ्युदय-निःश्रेयस का अधिकारी बनाता है। इसका सामूहिक फल है, संस्कृति और सद्धर्म का (पुरुषार्थ प्राप्ति का) इतिहास। देश-काल-सापेक्ष होकर मानव और धर्म परस्पर धारण-आचरण से आगे बढते है और अवसर पड़ने पर धर्म की रक्षा के लिए या तो राजा या अवतार-पुरुष कटिबद्ध व कर्मरत होकर तद्द्वारा आदमी और समाज की रक्षा करता है। क्योंकि धर्म हानि से क्षति और धर्म-रक्षा से रक्षण होते है।[2]

मानव धर्म और स्वधर्म का समन्वय कर लेना चाहिए। गुण, श्रम, वर्ण संस्कार, आश्रम, देश और काल के आधार पर स्वधर्म का निर्माण होता है। असाधारण परिस्थितियों में, जैसे युद्ध, अकाल आदि में आदमी अपने स्वधर्म को छोडकर आपद्धर्म की शरण ले सकता है। धर्म-

निर्णय तो वेद, शास्त्र एव ज्ञानी महात्माओ के दिग्दर्शन पर किया जाता है। श्रुति का स्मृति पूरक का काम करती है। विधर्म, परधम, उपधर्म-छलधर्म धर्मभाषा — ये पाच अधर्म है, जो उनमे विपरीत अथवा अछूता रहता है वही धर्म है। तात्पर्य है कि धर्म कोई मूर्खवाद नही है। वह आदमी के अर्थ-कामो और उनके द्वारा उसके सामाजिक जीवन-विधान को नैतिक बनाता है। उसी तरह वह मोक्ष को भी नैतिकता की परिधि में लाता है। फिर मोक्ष जैसे धर्म को आध्यात्मिक बनाकर तद्द्वारा अर्थ-कामो को भी आध्यात्मिक बनाता है।

अर्थ तो आदमी की सभी आवश्यकताओ की पूर्ति में सहायक होता है। वह उसका धन, पशु घर-बार, जमीन जायदाद, सबकुछ का समष्टि है। ऐहिक सुखजीवन और पारलौकि दान-पुण्य कार्यों में विनियुक्त होकर अर्थ सार्थक होता है। धन के बिना कोई कुछ परमार्थ का संपादन नहीं कर सकता। निर्धनता सभी बुराइयो का मूल कारण बनती है। गुणी भी धनी न हो तो उसका सकल्प व्यर्थ हो जाता है। वह अपना धर्म निभा नहीं सकता। इसीलिए महाभारत (शांति अध्या ८) में कहा है कि धन की चोरी धर्म ही चोरी होती है। कौटिल्य के अनुसार धन ही प्रधान है, क्योकि उसी मे धर्म व काम की पूर्ति होती है। सामाजिक उत्तरदायित्व को निभाये बिना किसी का सन्यास-ग्रहण कौटिल्य को मान्य नहीं है। वह ऐसे लोगो को शिक्षा-पात्र मानता है। तात्पर्य है कि आदमी को अर्थ का संपादन करके समाज मे अपना धर्म यथोक्त रीति से निभाना चाहिए।

काम आदमी की समस्त कामनाओं का समष्टि है। सभी चाहे, सब इच्छाए, सब आवश्यकताए उसी के अतर्गत आती है। फिर भी साधारणतया लैगिक धर्म को ही काम कहा जाता है। उसका धर्मानुरूप निर्वहण गार्हस्थ्य मे होता है, जो आठ प्रकार के विवाहो मे से किसी एक के द्वारा सपन्न होता है। यद्यपि विवाह के आठ प्रकार गिने गये है, तो भी उनमें पहले चार प्रकार ही प्रशस्त माने गये है, क्योकि वे ही अधिक धर्म-सगत है। तात्पर्य है कि काम का भी धर्मबद्ध होना वांछित है।

शारीरिक सुख और मानसिक तृप्ति की तत्काल लब्धि काम से होती है। उसकी पूर्ति से आदमी धीरे धीरे उससे विरत होकर रक्ति से विरक्ति की ओर अग्रसर होकर मोक्ष मार्ग पर आगे बढ सकता है। धर्मानुरूप, धर्मयुक्त काम-सपादन केलिए सहधर्मचारिणी पत्नी की व्यवस्था की गयी है। वह पतिव्रता, सती, साध्वी, ऐहिक और पारलौकिक धर्म मे सहचरी होती है। वह गार्हस्थ्य को निर्भर करती है। "गृहिणी गृहमुच्यते" कहकर उसी को घर बताया गया है। उसे पति की अनुपस्थिति मे अग्निकार्य करने का अधिकार है। पति को उसकी अनुपस्थिति में अग्निकार्य क्या, दान-धर्म व्रत-तीर्थ जैसो का भी अधिकार और सपूर्ण फल प्राप्ति की सभावना नही है। यही विवाह का बधन है, जो आमरण और मरणात में भी पति-पत्नी को बाधे रखता है। यह जन्मजन्मातर सबध भी माना जाता है।

लेकिन बौद्धिक व भावुक स्फूर्तिमत्ता केलिए गृहिणी की अपेक्षा प्रेयसी को अधिक माना जाता है। रुक्मिणी की अपेक्षा राधा के साथ कृष्ण की लीलाओ का साहचर्य इसका साक्ष्य है। फिर यही प्रेयसी विभिन्न ईश्वरीय शक्तियो का रूप धरकर कभी उस पुरुष की प्रचोदक शक्ति अथवा पुरुषाकार मानी गयी है। "आत्मा त्वं गिरिजामति.' इत्यादि का तात्पर्य इसी तथ्य की ओर सकेत करना है। लेकिन लौकिक स्तर पर वेश्या-सस्था के उदय व परिचालन भी इसी बौद्धिक व भावुक स्फूर्ति सपादन केलिए ही हुआ है। कौटिल्य इसका आर्थिक व राजनीतिक लाभ भी मानता है। सास्कृतिक महत्व को दिखलानेवाले सभी क्षेत्रो में धर्मपत्नी से काम नहीं चलता, तभी विशेष पत्नी की आवश्यकता मानी गयी है। पत्नी में समाज पातिव्रत्य व सेवा भाव का आदर्श देखना चाहता है तो वेश्या में बौद्धिक और भावुक विकास व विलास तथा सांस्कृतिक महत्व को लक्षित करना चाहता है और इसी लक्ष्य से उसे स्वीकार भी कर चला है। उपपत्नी का विधान भी समाज को मान्य हुआ है, जो कि देवी-देवताओ के आदर्श पर चलाया हुआ हो। कृष्ण की गोपी लीला का भी अपना अलग महत्व है, जो भक्त की आत्मा को परमात्मा की असख्य प्रेयसियो (भक्तात्माओं) में स्थान पाने की प्रेरणा देती है। फिर काम प्रतीको की असाधारण आराधना भी प्रचुर मात्रा में मिलती है। इतना होते हुए भी काम को दूर से भगाने का या उससे दूर रहने का उपदेश तो सदा से सुनाई पडना आ रहा है। इससे यही सिद्ध होता है कि काम सामाजिक एवं वैयक्तिक दृष्टि से कुछ हद तक अवश्य वांछित है, किंतु हद से बाहर होने का डर इसमें प्रबल है, अतएव इससे दूर रहने व सतर्क रहने का बार बार उपदेश मिलता है।

मोक्ष तो परम या चरम पुरुषार्थ है। यह आदमी की तात्विक जिज्ञासा का समाधान, आत्मा और परमात्मा के शाश्वत एवं अभिन्न संबंध का द्योतक और जीवन का चरम लक्ष्य है। माया अथवा अज्ञान से आदमी उस परम तत्व से पृथक भासित होता है, किंतु परमार्थ में वह उससे अभिन्न है। अज्ञान-कृत कर्म से जन्म, और ज्ञान-प्राप्ति से जन्म-राहित्य जो बताया जाता है तो जन्म से विमुक्ति का प्रयत्न यहीं इह-लोक में ही करना है। अपनी विमुक्ति का यत्न आदमी खुद करे। 'आत्मनात्मानमुद्धरेत्' शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् इत्यादि का अभिप्राय यही है।

मोक्ष के बारे में अद्वैत और तदितर दर्शनो का मत-भेद है। अद्वैत ब्रह्म-सायुज्य को मोक्ष मानता है। बाकी दर्शन ब्रह्म साक्षात्कार को मोक्ष मानते है। अद्वैत में केवल ब्रह्म को ही सत्य और बाकी सब को मिथ्या तथा जीव को ब्रह्म ही माना जाता है। दूसरे दर्शनो में ब्रह्म, जगत और जीव तीनों को सच माना जाता है, यद्यपि ब्रह्म बाकी दोनो का नियामक, नियंता और परिचालक कहा गया है। जो हो मोक्ष-प्राप्ति का मार्ग अथवा उपाय तो धर्म एव धर्मानुगत व धर्मसम्मत अर्थ-कामो के द्वारा ही प्रशस्त माना गया है। क्यो कि धर्म का निराकरण अथवा उसकी उपेक्षा मोक्ष-विरोधी है। जीवन-भर धर्म का आचरण करके ही कोई मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। धर्माचरण से वैयक्तिक और सामाजिक कर्तव्यो को निभाकर अर्थ-कामो के द्वारा धर्म का ही संपादन करके, ज्ञानी बनकर, बहुत्व में एकत्व की अनुभूति पाकर, कोई इह में ही पर को साध सकता है।

लेकिन सभी को वैसा ज्ञान सुलभ प्राप्य या सुख साध्य नहीं है। अधिकारभेद भी इसका कारण माना जाता है। तभी ज्ञान के साथ योग और भक्ति के मार्ग भी मोक्षोपाय के रूप में बताये गये है। इनमें भक्ति सर्वसुलभ मार्ग है, और उसमें भी शरणागति सबसे उत्तम सर्वश्रेष्ठ उपाय है। "मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मय्याजी मां नमस्कुरु", "सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरण व्रज" इत्यादि गीता-वाक्यो को इसी तथ्य के निदर्शक माना जाता है। दुनिया में रहकर स्वधर्म निभाते, कर्मफल का त्याग किये, परमात्मा की शरण में जाना मोक्ष का परमोत्तम उपाय है। भक्ति भी ज्ञान-निर्विशेष नही हो सकती, जैसे कि सच्चा ज्ञान भक्ति से निरपेक्ष मुक्तिदायक नहीं हो सकता। ज्ञान ही निष्काम कर्म एवं आत्मानुसधान तथा शरणागति का प्रेरक और भक्ति का पोषक हो सकता है। उसी तरह सच्ची भक्ति भी ज्ञानोदय का कारण अथवा उसमें सहायक बनता है।
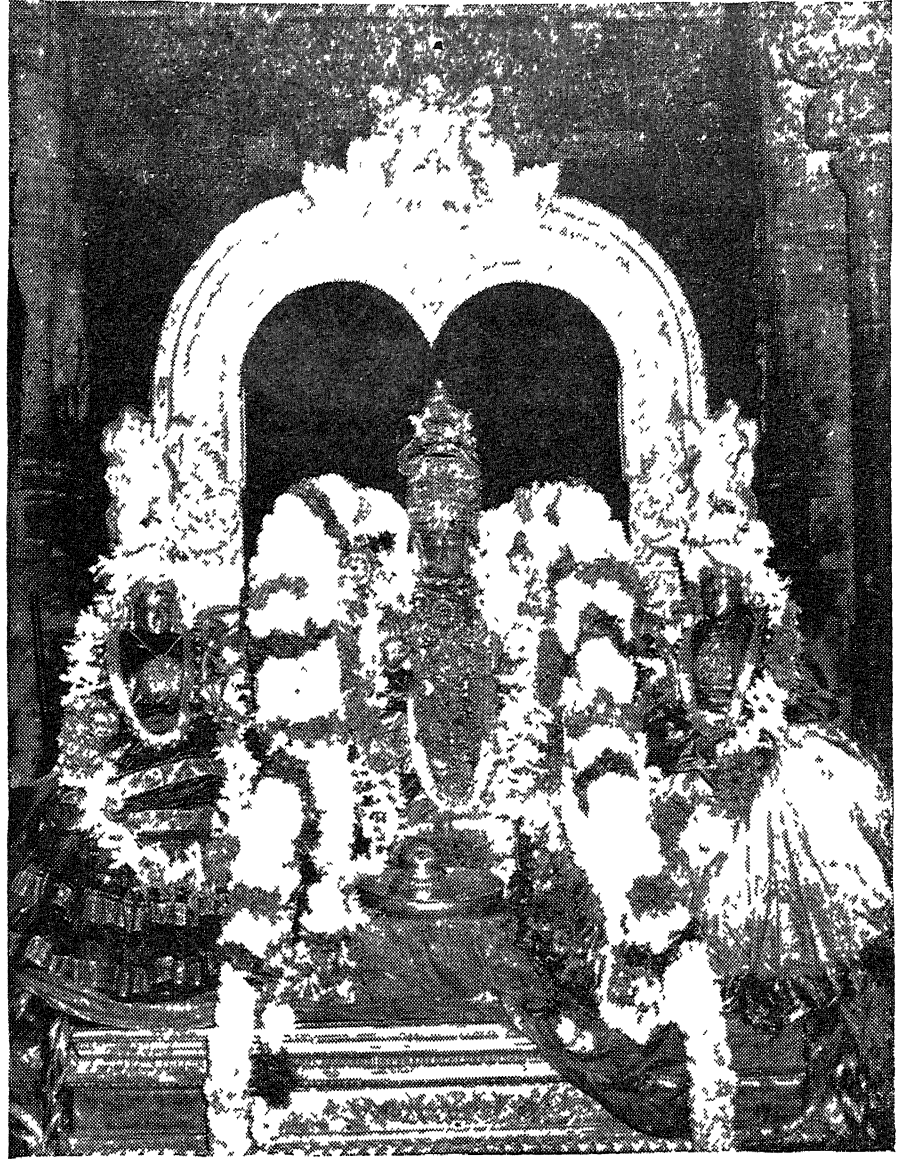
तिरुपति मे विराजमान श्री गोविन्दराज स्वामी मन्दिर के सम्प्रोक्षण के अवसर पर रुक्मिणी, सत्यभामा सहित श्री पार्थसारथी स्वामी की मूर्तिया

जीवन मे चार आश्रमो में से होकर आदमी अपनी धार्मिक यात्रा में आगे बढता है। ये चारो आश्रम उसकी मोक्ष-निश्रेणिका की चार सीढ़ियां जैसे है, जिनपर से होकर वह अपने तथा समाज के उत्तरदायित्वो का पूरा पूरा पालन करता हुआ मोक्ष की ओर अग्रसर होता है। इनमें पहला आश्रम ब्रह्मचर्य का है, जिसमें आदमी भविष्य जीवन केलिए आवश्यक विद्या व सस्कार पाता है। समावर्तन के बाद विवाह करके वह गार्हस्थ्य मे प्रवेश करता है। यह अन्य सभी आश्रमो का आश्रय है। बाद में (उत्तर वय में) वानप्रस्थ होकर फिर अत मे (शिखा-यज्ञोपवीतो का विसर्जन करके) सन्यासी बनता है। सन्यासी जातिपांति का अतीत रहता है। वह कहीं एक जगह स्थिर नहीं रहता। कल केलिए कुछ उठा नही रखता। समाज के अभ्युदय के सिवा उसकी और कोई कामना नहीं होती। समाज का ही श्रेय उसका श्रेय है। वह 'आत्मवत् सर्वभूतानि' माननेवाला 'जीवन्मुक्त' व्यक्ति होता है।

सभी आश्रमो के अपने अपने धर्म होते है, जिनको संस्कार कहते है। गर्भाधान से लेकर

(शेष पृष्ठ २९ पर)

तिरुमल – यात्रियों को सूचनाएं

कलियुगवरद भगवान बालाजी ससार के कोने कोने से अगणित भक्तों को अपनी ओर आकृष्ट करते है। हर रोज हजारों भक्त कलियुगवैकुण्ठ तिरुमल का दर्शन कर पुनीत होते हैं। तिरुपति तथा तिरुमल पहुचनेवाले इन असख्य भक्तगणों की सुविधा (यातायात, आवास, बालाजी का दर्शन इत्यादि) केलिए ति ति देवस्थान उत्तम प्रबन्ध कर रहा है। इन सुविधाओं के अतिरिक्त यात्रियों के भोजन की समस्या की ओर भी ध्यान दिया जा रहा है। देवस्थान की ओर से भोजनशालाओं की व्यवस्था तो है ही है उसके अतिरिक्त तिरुमल पर अन्य भोजनशालाए भी हैं जिन में भोजन पदार्थों की दरें ति ति देवस्थान के द्वारा नियन्त्रित की जाती हैं। अतएव यात्रियों से निवेदन है कि वे इन भोजन सुविधाओं का उपयोग करें।

तिरुमल पर भोजन सुविधाएं

ति. ति. देवस्थान का अतिथि गृह

जलपान	(समय)	प्रातः	६ बजे से ९ बजे तक
		दोपहर	३ ,, शाम ६ ,,
भोजन	,,	प्रातः	११ ,, दोपहर २ ,,
		रात	७ ,, रात ९ ,,

यहा पर मिठाई, नमकीन, चाय, काफी इत्यादि पदार्थ उपलब्ध है।

भोजन (full) रु ३–००

जो लोग यहां से भोजन अथवा जलपान प्राप्त करना चाहते है उनको नियमित समय के तीन घटे के पूर्व ही आर्डर (order) देना चाहिए।

काफी बोर्ड (कल्याणकट्टा के पास)

यहां पर केवल जलपान प्राप्त कर सकते है।

समय – प्रातः ५ बजे से रात १० बजे तक

काफी बोर्ड (क्यू शेड्स के पास)

यहां पर दहीभात, हल्दीभात तथा शीत पेय प्राप्त होते है।

समय प्रातः ५ बजे से रात १० बजे तक

टी बोर्ड (ए. टी. काटेज के पास)

यहा पर चाय तथा बिस्कुट प्राप्त होते है।

समय : प्रातः ५ बजे से रात ९ बजे तक

अन्नपूर्णा भोजनालय

यहां पर अनेकविध मिठाई, नमकीन आइस क्रीम, शीत तथा गरम पेय प्राप्त होते है।

(समय) प्रात : ५ बजे से रात १० बजे तक

भोजन समय – प्रात : ९ बजे से शाम ३ बजे तक

तथा

शाम ६ बजे से रात १० बजे तक

भोजन (थाली)	रु १–७५
अतिरिक्त प्लेट भात	रु. ०–६०
भोजन (full)	रु. ३–००

वुडलॉड्स (ति.ति.दे के अतिथिगृह के पास)

यहां पर जलपान, भोजन, शीत तथा गरम पेय प्राप्त होते है।

जलपान	(समय)	प्रातः ६ बजे से रात १० बजे तक
भोजन	,,	प्रातः ११ बजे से दोपहर २–३० बजे तक

मद्रास भोजन	रु. ४–००
उत्तर भारतीय भोजन	रु. ६–००
प्लेट भोजन	रु. १–७५

तिरुपति में देवस्थान का भोजनालय

ति. ति देवस्थान का भोजनालय (पहली धर्मशाला)

समय प्रातः ५ बजे से रात ९ बजे तक

यहा पर जलपान, आम्प्रो बिस्कुट तथा शीत और गरम पेय प्राप्त होते है।

ति. ति. देवस्थान का भोजनालय (दूसरी धर्मशाला)

यहा पर जलपान, भोजन, शीत तथा गरम पेय प्राप्त होते है।

जलपान	(समय)	प्रातः ५ बजे से	प्रातः ९–३० बजे तक
		दोपहर २–३० ,,	शाम ६ बजे तक
भोजन	,,	प्रातः १०–३० ,,	दोपहर २ बजे तक
		६–३० ,,	रात ८ ,,

प्लेट भोजन	रु. १–५०
अतिरिक्त भात (३५० ग्राम)	रु. १–००
दही	रु. ०–४०

वैष्णवभक्ति

डा० एस. वेणुगोपालाचार्य,
मण्डया

उत्तर भारत मे शुग और कण्व वशो की अवनति हुई तो हिमाचल से कर्णाटक तक विस्तृत मगध साम्राज्य छिन्नभिन्न हुआ । उसके ब्राह्मण सरदार पूर्वीय द्वीप प्राय-द्वीपो में व्यापारियो और कुशल कलाकारो को साथ ले चले और उपनिवेश स्थापित करके राजकाज करने लगे । ब्रह्मदेश, काबोज, चपा, श्रीविजय, मलय एव यवद्वीप के मयापहृत (मजापहृत) आदि के हिन्दू राज्यो ने ईसा की पहली शताब्दी से लगातार पन्द्रहवीं शताब्दी तक उन देशो मे वैष्णवभक्ति पर आधारित वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था करके सुखशान्तिमय तथा सघर्ष रहित रामराज्य को स्थापित किया ।

चपा के एक शिलालेख से पता चलता है कि कौडिन्य नामक एक ब्राह्मण वीर ने वहाँ के नाग-राज की पुत्री से व्याह करके द्रोणपुत्र अश्वत्थाम प्रदत्त भाले को बोकर चपा राज्य की स्थापना की । रूमेर यानी काबोज के ऐतिह्य के अनुसार कबुऋषि और उस देश की अप्सरा मेर के वशजो ने काबोज या रुमेर राज्य की स्थापना की । ईसी की पहली शती से पन्द्रहवी शती तक उन देशो के सभी राजाओ के नाम वर्मा शब्द से अत होते थे । पाँचवी शती की लिपि पूर्व तथा पल्लव लिपि थी । सन् ४८४ ईस्वी मे काबोज के राजा कौण्डिन्य जयवर्मा ने चीन मे बौद्धधर्म के प्रचार करने नागसेन नामक भिक्षु को भेजा था । सन् ६५० ई० मे अग को (अग प्रभु) नगर काबोज की राजधानी हुआ । सन् ८०२ ईसवी मे अग को राजवंश के राजा जयवर्मा से हरिहरालय (प्राखन) अमरेन्द्रपुर (बन्ते ई छमर और महेन्द्रपर्वत बसाये गये । वहाँ के प्रासादो मन्दिरो और पुलो की भित्तियों में विविध वैदिक एवं पौराणिक देव-देवियो के विग्रह स्थापित हुए और लेपचित्र अकित किये गये । जयवर्मा द्वितीय का समय काबोज का स्वर्णयुग कहलाता है । उसकी सहायता से वहाँ सगीत साहित्य और विविध कलाओ की महान प्रगति हुई । राजा इन्द्रवर्मा के समय से अमरावती के शिल्प की जगह पिरमिड या गोपुर शिल्प अपनाया जाने लगा । दसवी और ग्यारहवीं शतियो में क्रमश: राजा यशोवर्मा से बेयान् नामक बृहत् शिवालय और राजा जयवर्मा से अगकोर्वट नामक विष्णुमन्दिर इस नूतन शैली से बनाये गये। अगकोर्वट का प्राकार लगभग एक किलोमीटर लबा है । उसमें रामायण, महाभारत हरिवंश तथा कृष्णावतार से सम्बन्धित सहस्रो चित्र अकित हैं ।

सन् ११४० ईसवी मे अभिषिक्त यशोवर्मा द्वितीय विरक्त बौद्धसन्यासी बनकर कहीं चला गया तो काबोज में अनायकता फैली । त्रिभुवनादित्य नामक सरदार ने अनायकता का अत करते तीस वर्षो तक राजकाज सभालने का प्रयत्न किया किन्तु आपसी फूट तथा चपाराज्य के समुद्री आक्रमणो के परिणाम से त्रिभुवनादित्य मारा गया । इसी सदर्भ मे राजमाता मम शिवका (Mamasivaca) अपने बच्चो और हितैषियो को साथ लेकर नाव में बैठकर दक्षिण अमेरिका के पश्चिमी तट मे तमोनाशन (Tamoncan) नामक जगह पर उतरी । राजमाता आँसू बहाते गद्गद कठ मे राजकुमार से कहने लगी । हे वत्स, रोक्का जबतक हमारे पूर्वज अपने परमपिता सूर्यदेव एव वरसुख की स्वाभाविक उपासनाओ और सैनिक अभ्यासो मे निष्ठापूर्वक व्यस्त थे, तब तक प्रजासुखी थी और राजा वशपारपर्य से हमेशा शत्रुओ पर वैभवपूर्य विजय प्राप्त कर सके थे । उनके छोड देने से ही बर्बरो का अधिकार और असह्यमय बन्धन सहने पडे । हमने तुमको राजा बनाने का निश्चय किया है । हमारा विश्वास है कि तुम अपनी सामर्थ्य तथा वरसुख (Viracocha) पर रखे भरोसे से इस नगर एव राज्य को पहले ही जैसे वैभवपूर्ण बनाओगे । इसके वशज आर्य मानसतप (Ayar Manco Topa) आर्य शक्तितप (Ayar Chaki Topa) आर्य उच्चतप (Ayar Aucca Topa) और आर्य आयुष्यतप (Ayar uyssu Topa) के प्रयत्नो से गौतमालय (Guatemala) मधिको (मधस्वामी) (Mexico) यशस्थान (Yucatan) और अगदेश पर्वत (Andes) के चारो ओर व्याप्त सूर्य देश परू (प्रभु) (Peru) मे वैष्णव भक्ति पर आधारित वर्णाश्रमधम सर्वदेवनमस्कार केशव प्रतिगच्छति' की धारणावाली उपासना प्रणालियो सहकारी तथा पारिश्रमिक जीवन-यापन करने वाले प्रजाओ से युक्त रामराज्य स्थापित हुए। ये सोलहवीं शती से स्पेन के आक्रामक स्वार्थी उपनिवेशको से उजाडे जाने लगे ।

तिरुमल पर श्री बालाजी का चक्रस्नान
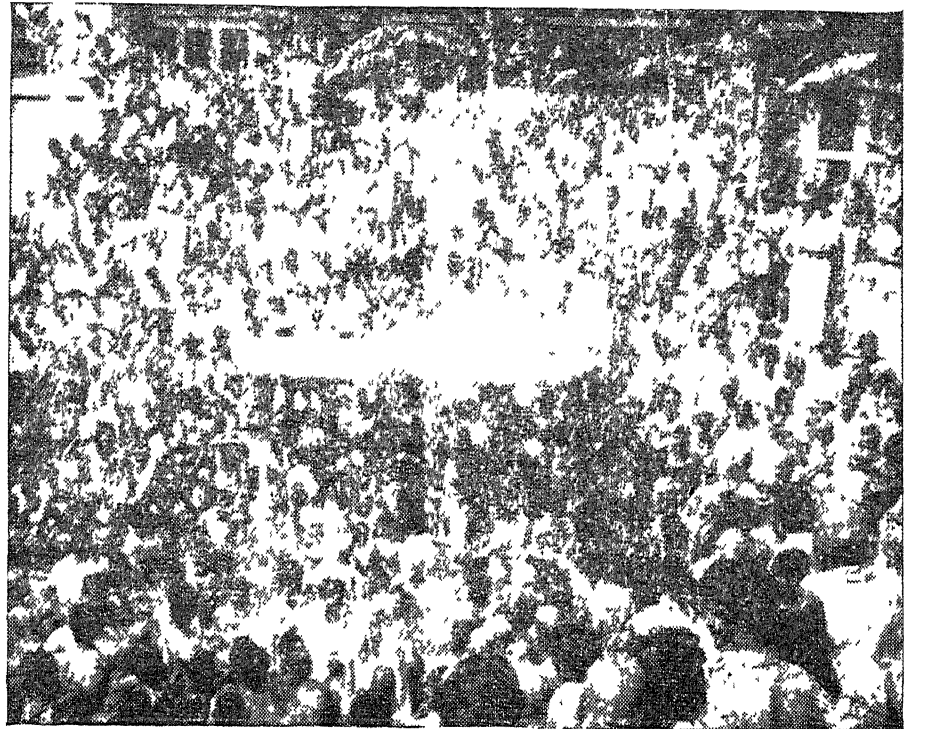
श्री कल्याण वेंकटेश्वर स्वामीजी का मंदिर
नारायणवनम्, [ति· ति. देवस्थान]

दैनिक-कार्यक्रम

१	सुप्रभात	प्रातः	६–३० से	प्रात	७–०० तक
२.	मंदिर के दर्वाजे खोलना	,,	७–००		
३.	विश्वरूप सर्वदर्शन	,,	७–०० से	,,	८–३० ,,
४.	तोमालसेवा	,,	८–३० ,	,,	९–०० ,,
५	कोलुवु & अर्चना	,,	९–०० ,,	,,	९–३० ,,
६.	बहुली घटी, सात्तुमोरै	,,	९–३० ,,	,,	१०–०० ,,
७.	सर्वदर्शन	,,	१०–०० ,,	,,	११–३० ,,
८.	दूसरी घटी अष्टोत्तरम् (एकांत)	,,	११–३० ,	मध्याह्न	१२–०० ,,
९.	तीर्मानम्	मध्याह्न	१२–००		
१०	मंदिर के दर्वाजे खोलना	शाम	४–००		
११.	सर्वदर्शन	,,	४–०० से	शाम	६–०० ,,
१२.	तोमाल सेवा & अर्चना	शाम	६–०० ,,	,,	६–३० ,,
१३.	रात का कैंकर्य तथा सात्तुमोरै	,,	६–३० ,,	रात	७–०० ,,
१४.	सर्वदर्शन	रात	७–०० ,	,,	८–४५ ,,

अर्जित सेवाओं की दरें

१	अर्चना & अष्टोत्तरम्	रु	१–००
२.	हारति	रु.	०–२५
३.	नारियल फोडना	रु.	०–१०
४	सहस्र मामार्चना	रु.	५–००
५	पूलगि (गुरुवार)	रु	१–००
६.	अभिषेकानंतर दर्शन (शुक्रवार)	रु.	१–००
७.	वाहनम् (वाहन वाहकों के किराये बिना)	रु	१५–००
८.	सिंगमोरै, तेल खर्च	रु	२–५०

कार्यनिर्वहणाधिकारी,
ति ति, देवस्थान, तिरुपति.

मेक्सिको नगर तथा अन्य अमेरिका के वस्तु सग्रहालयो में उन प्रदेशो के सैकडो भग्नमन्दिरो की कलाकृतियाँ शिला मूर्तियाँ आदि सुरक्षित है। उनसे पता लगता है कि उनपर भारतीय सस्कृति का सर्वाधिक प्रभाव था। आजकल गिरजाघर के रूप में प्रयुक्त कुशको नगर का प्राचीन सूर्य-मन्दिर बोलीबिया के सूर्यमन्दिर का महाद्वार, मेक्सिको नगर के बृहत् शिवालय का भग्नाव-शेष, ताजिन गोपुर आदि उस युग के स्थायी स्मारक है। गौतमालय का कूर्मावतार विग्रह सोपान (Copan) नगर की नरसिहमूर्ति पालके (Palanque) का हिन्दूकल्पवृक्ष मेक्सिको की वामन - बलींद्र की शिलाकृति, रूप में प्राप्त सर्प-भूषित जटाधारी शिवजी के सामने नृत्य करते मूषकवाहन मुक्त गजानन शख तथा वेणुवाद्यो के साथ दीपारती पाते सूर्यमण्डल योगनिद्रासीन नारायण के नाभिकमल से उदभूत ब्रह्मा की शिलामूर्ति, सिहवाहिनी दुर्गादेवी के चित्र आदि ही नहीं किन्तु मुझे पता कन्नड - तेलुगु लिपि में लगा है कि बहुत सी उत्कीर्ण शिलाकृतिया भी मिली है। चिरग्वा के सिक्के और गौतमालय के आर्यमानसतप के राज दरबार की शिलाकृतियो में ऊपर मयो की चित्रलिपि है और नीचे कन्नड़-तेलुगु लिपि मे स्पष्टतया उत्कीर्ण है "अगक राज श्री आर्य मानस तप"। मेक्सिको की वामन - बलीन्द्र की शिलाकृति में कन्नड - तेलुगु लिपि में "बलीन्द्र त्रिविक्रम" टाँका गया है किन्तु त्रिविक्रम शब्द का भाग उसमें भग्न पाया गया है। उपर्युक्त अवशेषो के अलावा और भी बहुत से छायाचित्र न्यूयार्क मे डा० भिक्षुचमन-लाल से १९६६ में प्रकाशित "हिन्दू अमेरिका" नामक ग्रथ में देखे जा सकते है। वाचको की सुविधा केलिये अतिम दो छाया चित्रो के प्रति रूप यहाँ मुद्रित है। मेरा निजी विश्वास है कि अन्य अवशेषो में भी भारतीय भाषाओ के लेख है किन्तु हमारी निरुत्साही प्रवृत्ति के कारण कुछ ही दिनो मे वे भी अपाठ्य बन जाएंगे।

आजकल के हमारे सभी इतिहास ग्रथो की घोषणा है कि सन् १४९२ ईसवीं कोलंबस ने अमेरिका की खोज की और वहाँ के निवासी अधनगे अनागरिक थे। वास्तवाश यह है कि युगयुगांतरो से प्राचीन अमेरिका और भारतीयो का सम्बन्ध था और वह तब पाताल कहलाता था। उस देश के मूलनिवासी मयीमय, तक्षक, नहुआ आदि देवासुर युद्ध के बाद लग-भग अबसे आठ दस सहस्र वर्ष पहले जा बसे थे और

वे मघवान, नहुष, तक्षक आदि गण के सदस्य थे। वे क्रमश शक्र इन्द्र के प्रीत्यर्थ यज्ञ यागादि करनेवाले तांत्रिक एवं सर्प पूजक थे। मयो की सस्कृति अचानक ईसा की नौवीं शती में अन्त हुई। वे नाव चलाने में ही नहीं किन्तु प्रासादो, मन्दिरो पुलो तथा मार्गो के बनाने मे दक्ष थे। मध्य अमेरिका मे हर कहीं उनकी कृतियो के अवशेष भर पडे है। रामायण, महाभारत एव प्राचीन भारतीय पुराणेतिहासो में उनकी बातें छिपी पडी है और उन्हे हम सबने कपोल कल्पित मानकर टालने की प्रवृत्ति सीख ली है। पालके का ऐतिह्य है कि वहाँ के नागपूजको के पूर्वज वोतन के नेतृत्व मे द्वीपद्वीपातरो को पार करके वहा आ बसे थे। मेक्सिको के ऐतिह्य के अनुसार उसके आस्तिक (Aztec) सम्राटो के मूलपुरुष एवं उनके अनुयायी शान्ति सागर के द्वारा एक बडी नाव मे आकर वहाँ राज्य स्थापित करके लौटे हुए एक राजा के अधीनस्थ थे। वे दक्षिण अमेरिका के पश्चिमीतट पर उतर कर अगदेश-पर्वत (Andes) के पार्श्व में उत्तराभिमुखी हो-कर पापकट पाताल नामक (Popocatopatl) अग्नि पर्वत आदि पार करके गौतमालय के तमो-नाशन में बसकर क्रमश: उपनिवेशो एव राज्य-निर्वहण मे व्यस्त हुए थे। वे मेक्सिको के पर्वतो पर स्थापित पञ्चाष्ट अघनाश (Pancha cta unanchac) नामक महाशकु एव आठ स्तभो की छाया से ग्रहगतियो की गति पहचानते थे और व्रतपर्वो के दिन निश्चित करते थे। मिशन-रियो ने उनको पैशाचिक यन्त्र समझकर नष्ट-भ्रष्ट किया। मेक्सिकन न्याशनल म्यूसियम् में अब तक एक पत्थर का चतुर्भुग पचाग फलक सुरक्षित है जिसका व्यास बारह फीट और बोझ एक टन है। कहा जाता है कि राजप्रासादो और सभांगणो मे वैसे सोने और चान्दी के फलको मे नक्षत्रो तथा पर्वो को अकित कर रखे जाते थे। वहाँ के लोग चतुर्युग, जलप्रलय, पर्वताग्र भूमाता ध्रुवनक्षत्र, सूर्यदेव तथा अग्रजो के प्रति गौरव तथा श्रद्धा रखते थे। देवमन्दिरो मे अविरत पवित्राग्नि की रक्षा एव ठीक समय पर पूजा पाठो का निर्वाह करना मठाधिपतियो तथा छात्रो के कर्तव्य थे।

मेक्सिको के आस्तिक सार्वभौम अविचल (Ahuitzol) ने मेक्सिको नगर मे पर्वताकार का एक बृहत् शिवालय बनवाया। सन् १४८३ ईस्वी से आठ वर्षो तक सहस्रो शिल्पी इसके निर्माण में लगे रहे। १४९० ई मे उसके प्रतिष्ठा महोत्सव में तक्षक (Tezuco) और त्रिसोपान (Tiacopan) के महाराजा एव साठ लाख यात्रियो ने भाग लिया था। १५०२ ई. में गौतम: (Cuatemac) मेक्सिको का सार्वभौम बना। वह १५०० वनस्पतियो की औषधियो, ज्योतिष, न्यायशास्त्र, युद्धकला प्रशासनशास्त्र आदि में विद्वान था। उसके भव्य प्रसादो के चारो तरफ एक सौ स्नानागार, सभाभवन, विशाल तैरने योग्य पुष्कर उपवन दशसहस्र सैनिको के शिबिर पाँच हजार विद्यार्थियो के लिए बसते अध्ययन करने सुविधापूर्ण मठ आदि विद्यमान थे। तीन सौ वैद्यो एव कर्मचारियो से रक्षित पक्षियो का प्रदर्शनालय राजधानी का अत्याकर्षक केन्द्र था। वहाँ के शिवालय की ११४ सीढिया थीं। स्पेन के आक्रामक कार्टेज के अनुसार वहा युद्ध के अधिष्ठातृ देव वरसुख की मूर्ति सोने के हृदयो चान्दी के रुण्डो और नीलमणिमय सापो से की मालाओ और हाथो मे धनुर्बाणो मे अलकृत थी। नरबलि चढाकर उसके सामने थाली मे उनके हृदय धूप के साथ जलाये जाते थे। मेक्सिको मे प्रस्तुत बृहत् शिवालय के अतिरिक्त इन्द्र, आदिशेष, विष्णु गणपति यम आदि के भी बहुत से मन्दिर थें।

गौतम के पश्चात् मतिसुम (Montezuma) दक्ष सार्वभौम और प्रधान न्यायाधिपति बना। उसके न्यायालय मे तीस न्यायाधीश थे। राज-द्रोह नशाखोरी व्यभिचार, वेषपरिवर्तन, कूट-करण, व्यर्थव्यय, परसपत्ति का दुराक्रमण, युद्ध-भूमि से भागना, मृत्युदण्ड से दण्डनीय थे। जब कार्टेज और स्पेन के समुद्रीडाकू पिजरों और उनके अनुयायियो से मध्य और दक्षिण अमेरिका खोजी गयी और उन्होने देखा कि वहां आस्तिको का मेक्सिको और अगक राजाओ का पेरू साम्राज्य सपद्भरित रासराज्य थे तो उनकी लोभपूर्ण वक्रदृष्टि उनपर पडी, पेरू साम्राज्य कुशको नगर से शान्तसागर और इक्वेडार से दक्षिण चिली तक तीन हजार मील लबे और बारह लाख वर्गमील के प्रदेश में दो करोड लोगो का सरक्षक था। उसके सम्राट अत्यल्प (Atahuallpa) ने पिजरों और उसके चार सौ अनुयायियो को आश्रय दिया था किन्तु उन कृतघ्न और धूर्त अतिथियो ने नमक हरामी की। पिजरों ने राजा और रानी को भोजन केलिये आमत्रण दिया तो वे पालकी में बैठकर सहस्रो निरायुध प्रेक्षको के बीच से जुलूस मे निकले। पिजरों के सशस्त्र सैनिको ने राजा और रानी को गिरफतार किया और सहस्रो प्रेक्षको की हत्या की। लोगो से एक कमरे भर सोने और दो कमरो भर चान्दी को मुक्ति धन के रूप मे लेकर भी राजा को स्पेन की स्वाधी-नता एवं ईसाई धर्म की अस्वीकृति के आरोप लगाकर गला घोटकर मरवा डाला। इस प्रकार पेरू साम्राज्य को अत करके वे लूटमार करने में व्यस्त हुए। घरो, मन्दिरो और राजसमा-धियो को लूटकर सोना चान्दी इकट्ठा करके स्पेन भेजना, विग्रहो को तोडना, ढूंढ ढूंढकर सभी पुस्तकें जलाना, लोगो को बलात्कार से

तिरुपति में विराजमान श्री पार्थसारथी स्वामीजी का गलावाहन

ईसाई बनाकर उन्हें अपने मूल.मों के रूप में परिवर्तित करना ही अगले सैकडों वर्षों का अमेरिकी इतिहास है।

कहा जाता है कि १५७३ ईस्वी में त्रिशिला (...) नगर की ... मे ही दस लाख डालरों का सोना निकाला गया था। कुस्को नगर के सूर्यमन्दिर की दीवारें सोने के चादरों से आच्छादित थीं। आजकल जहां ईसाई गिरजाघर की वेदी है वहां विविध मणि-मण्डित सोने का बृहत सूर्यमण्डल सामने चांदी का चन्द्रमण्डल ऊपर रत्नवैडूर्यों की नक्षत्रमालाएं और नीचे उन्हीं से बनी लतावल्लरियों, पौधों एवं फव्वारों के बीच में पेरू साम्राज्य के बारह सम्राटों और उनकी पत्नियों के विग्रह जगमगाते थे। सोने के तीन चार पाद प्रमाणवाले वे सभी विग्रह अपने स्वाभाविक वस्त्राभरणों एवं शस्त्रास्त्रों से अलकृत होकर स्वप्नलोक में खडे हुए व्यक्तियों के जैसे दृगोचर होते थे। सैकडों देवमन्दिरों में प्रतिदिन दिन में चार बार और रात को तीन बार षोडशोपचार पूजा एवं मन्दिरों के गोपुरों में हवन करने की व्यवस्था थी।

मेड्रिड, ड्रेस्डेन और प्यारिस के पुस्तकालयों में सुरक्षित तीन-चार पुस्तकों और भग्नाव-शेषों पर प्राप्त लिखावटों के अतिरिक्त प्राचीन हिन्दू साम्राज्यों के सभी साहित्य आततायियों के दुराचरणों से विनष्ट हो गये हैं। तो भी तत्कालीन पाश्चात्य लेखकों के वर्णनों से उनके सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं और आचार विचारों का पूर्ण परिचय प्राप्त हो सका है। मेड्रिड के न्याशनल लाइब्ररी की पुस्तक में सर क्लिमेण्ट मार्क से अनूदित हवनयज्ञ के समय, पेरू में प्रयुक्त स्तुतियों को सुनिएगा। वे वैदिक स्तुतियां ही हैं।

"हे अजेय, शाश्वत एवं अनुपम सृष्टिकर्त्ता वरमुख, तुमसे मानव को प्राणशक्तियां इसीलिये प्रदत्त हैं कि वे भय, दुःखों और रोगों से विमुक्त होकर जिएं इन आहुतियों को लेकर हमें सुखी जीवन एवं रक्षा प्रदान करो।।

० सृष्टि और भविष्य के नियामक विश्वप्रभु वरमुख (Viracocha) तुम पुरुष, स्त्री या जो कोई भी हो कहां होगे। तुम ऊपर, नीचे या चारों ओर से आकाश सागर, संसार मानव सब पर आधिपत्य कर रहे हो।

हे परमदयामयी, समस्त प्राणियों के स्रष्टा तुम अगोचर के दर्शन करने मेरी आत्मा तडप रही है। भूख-प्यास से विमुक्त होकर फूलने फलने एवं सुख-शान्ति पाने अनाज और फूलों को समृद्धि करो और उन्हें ठण्डी से बचाओ।

डा० राबर्ट हैनगिल्डर के अभिप्राय में अगक (INGA/INCA) राजाओं के मूलपुरुष ईसा की दूसरी या तीसरी शताब्दियों में ही अमेरिका में आ बसे थे। उन्हें यह अभिमान था कि हम सूर्यवंश के कौशल्या पुत्र राम के वंशज हैं। प्रति वर्ष वे कर्काटक सक्रमण के बाद पांच दिनों तक रामोत्सव (Ramasitva or Reymi) या रामनवमी आडंबरपूर्ण रीति से मनाते थे। उनकी भाषा केशव (Quichua) संस्कृतमय थी। मुझे पता लगा है कि उसमें बहुत से कन्नड और तेलुगु के शब्द भी हैं, आज-तक केशव ही पेरू की राष्ट्रभाषा है। देवता केलिये तेवतल (Teotl) देवालय केलिये तेव-शाले (Teocalli) छोटी और बडी पाठशालाओं केलिये शालपल्लि (Calpalli) और शालमह (Calmacac) विष्णु केलिय (Tlalocnauch) त्रिलोकनाथ लक्ष्मी केलिये चिनतेवतल Cinteotl आदि केशव भाषा में प्रयुक्त शब्द थे। पर्वा के समय चक्र पूजा में प्रयुक्त चक्र की डोरिया यानी वोलन्दार (Volador) शुद्ध कन्नड शब्द है। कन्नड में वोलदार का अर्थ होता है ...वाली डोरी।

प्राचीन अमेरिका के लोगों में वर्णाश्रमधर्म एवं षोडषसंस्कारों के पालन से उनका जीवन सुखसपन्न था। वर्गसंघर्ष, बेकारी असहिष्णुता आदि आधुनिक समस्यायें कभी उत्पन्न नहीं हुईं। किसान, बढई, लोहकार, कुम्हार, शिल्पी जुलाहे आदि कलाकार परपरा प्राप्त ज्ञान से अपनी अपनी वृत्ति में कौशल्य बढाते थे। राजपरिवार पुरोहितों और व्यापारियों के बच्चे गुरुकुलों में शिक्षा प्राप्त करते थे। गुरुकुल के अध्यापक और व्यवस्थापक अमात्य (Amatua) कहलाते थे। सिंहासनाधिकारी को हुअरयु (Huaracu) यानी युवराज का अभिधा दी जाती थी हूअरयु कन्नड शब्द है जिसका अर्थ होता है फूला हुआ राजा। डोरों के गुच्छों में वे आकडों का विव-रण सग्रह करते थे। ये गुच्छे उनकी भाषा केशव में चिप्पु (Quipu) कहलाते थे। कन्नड में चिप्पु का अर्थ होता है गुच्छ।

लगभग पांच सौ वर्षों की विरुद्ध परिस्थितियों से उनके वंशजों के बाह्य वेष भूषा और धर्म-परिवर्तन के बावजूद वे अपनी प्राचीन आचार विचारों और संस्कृति की महत्ता को नहीं भूल सके हैं। वहां के ग्रामीण और गिरिगह्वरों के निवासी आजतक वर्णाश्रमधर्म के पालक और मत्स्याहारी हैं। सूर्य नमस्कार करके अग्नि में मुट्ठी भर आहार समर्पण करके भोजन करना अतिथि सत्कार, भोजन के पहले कुल्ला करने पानी देना चूना के साथ कोको और तम्बाकू की पत्तियाँ चबाना, साल में एक बार रामोत्सव मनाकर आग पर चलकर पवित्र बनना धर्मार्थ हवन श्राद्धादि के आचरण, अकाल के समय ब्राह्मणों हूनों (H-men) से शक्र (Chac) कौलय याग और सामूहिक भोजन कराना आदि आज-तक उन लोगों में प्रचलित है।

सन् ५२६ ईस्वी में मयनिर्मित यक्षचिलान (Yaxchilan) के देवमन्दिर के शिलालेख में मयलिपि में यह अंकित है कि उसका निर्माण ईस्वी पूर्व ३११४ के एक निश्चित दिन अगस्त ग्यारहवीं तारीख से १४,२२,००० दिनों के पश्चात शुरू हुआ। पाठकों को ज्ञात ही है भारतीय ईस्वी पूर्व ३१०२ से कलियुग की गणना करते हैं।

आजतक पेरू के लोग परस्पर भेंट करते समय कहते हैं असत्यभाषण चोरी और आलस्य से बचे रहो। "वसुधैव कुटुंबकम" की भावना और 'सर्वदेव नमस्कारं केशवम् प्रतिगच्छति' की धारणा वाली वैष्णव भक्ति पर आधारित भार-तीय संस्कृति उनमें अबतक नहीं मिट सकी है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति के प्रति दिनों दिन अमेरिका के निवासी अधिकाधिक आकृष्ट हो रहे हैं।

मेरे उपर्युक्त अध्ययन से सिद्ध हुआ है कि काबोज एवं मध्य तथा दक्षिण अमेरिका के अगक राजा (INGA/INCA) बिहार से कर्णाटक तक के शासक (ईसा की दूसरी शती से सातवीं शती तक) ईक्ष्वाकु राजाओं से सम्ब-न्धित थे और उनकी भाषा इसी कारण कन्नड-तेलुगु और उडिया से सम्बन्धित थी। ✻

सांस्कृतिक चेतना के प्रतीक - ये पर्व और नारी

परिवर्तन शीलता जीवन का शाश्वत नियम है। ससार के उत्थान-पतन का चक्र निरंतर घूमता रहता है। विश्व में अनेक देशो में संस्कृतियों का उदय हुआ और कालचक्र में पड़कर अतीत के अधकार में वह विलीन भी हुई। परन्तु वैदिक काल से लेकर आज तक भारतीय संस्कृति जीवित है।

भारतीय सस्कृति की सुरक्षा में भारतीय त्यौहारो का विशेष योगदान है। हिन्दु धर्म के अनुसार वर्ष के बारह मासो में अनेक त्यौहार आते है, जिन्हे भारत के विभिन्न प्रांतो में अपनी पद्धति के अनुसार मनाया जाता है।

आज के इस वैज्ञानिक युग में, शिक्षाक्रम में बहुत ही परिवर्तन हुआ है। प्राचीन तथा आधुनिक शिक्षा प्रणाली में बहुत अन्तर आया है। आधुनिक शिक्षा के परिणामस्वरूप युवा पीढ़ी अपने त्यौहारों के धार्मिक, सामाजिक या राष्ट्रीय महत्व से अनभिज्ञ है। अपनी संस्कृति, आचार-विचार के स्थान पर पाश्चात्य संस्कृति तथा नकली आचार-विचार सब के मन में घर कर रहे है। परिणामतः आज हमारी युवा पीढ़ी, त्यौहारों के सम्बन्ध में, कौनसा त्यौहार किस मास में आता है, उसका स्वरूप क्या है, क्यो मनाया जाता है, इसे जानती नहीं है। इस अज्ञानता को दूर करने का दायित्व नारी वर्ग पर है। जिस घर की नारी त्यौहारो का महत्त्व जानती है वह अपने बच्चो में सस्कार उत्पन्न कर सकती है। छोटे बालक अनुकरण प्रिय होते है। वे बड़ो का सदैव अनुकरण करते है। अतः त्यौहारो के सामाजिक, धार्मिक तथा राष्ट्रीय स्वरूप को, शिक्षित और अशिक्षित नारी को समझना चाहिए इतना ही नहीं अपितु उस की रक्षा भी करनी चाहिए।

आज इस आधुनिक युग के यांत्रिक जीवन में मनुष्य अपने प्राचीन रीतिरिवाजों के अनुसार ही सभी त्यौहारो को नहीं मना सकता, इसके पास समय तथा धन का अभाव है। जनता में भावुकता के साथ त्यौहार मनाने के लिए साधनो के अभाव व नास्तिकता की भावना के कारण आज परिवर्तन आ गया है। तथापि भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता की छाप हम पर ऐसी पडी हुई है जिसके लिए भारतीय त्यौहारो का ज्ञान, रीति रिवाज जानना अनिवार्य है। भारतीय त्यौहारों के पीछे उसकी कहानी जुडी हुई है।

डॉ० श्रीमती सुशीला व्यापारी,
प्राध्यापिका, हिन्दी महाविद्यालय
हैदराबाद

त्यौहारो का जो भी रूप आज सुरक्षित है वह नारी के कारण ही है। गृहिणी अपने धर्म-कर्म से, कर्तव्य से परिवार का ही नहीं अपितु समाज, देश और राष्ट्र का कल्याण करती है।

तिरुमल-तिरुपति देवस्थान, तिरुपति

कोइल आलवार तिरुमंजनम्

आगम शास्त्रों ने देवस्थलो में पवित्रता की आवश्यकता तथा वैशिष्ट्य का विशेष उल्लेख किया है। मंदिर के अन्दर प्रवेश करने के पहले स्नान करना, पादरक्षाओ को छोडना इत्यादि कुछ नियम इसी पवित्रता को बनाये रखने केलिए ही निर्णीत किये गये हैं। मंदिर के अहाते में ही नही बल्कि गर्भगृह में भी आगम शास्त्र के अनुसार एक पवित्र तथा आरोग्यदायक कार्यक्रम सपन्न होता है जो कोइल आल्वार तिरुमजनम् के नाम से अभिहित है।

इस सेवा विधान मे सभी मूर्तियाँ तथा अन्य वस्तुएँ दीपों सहित गर्भगृह से बाहर लायी जाती हैं। और मूलमूर्ति को पानी अदर नहीं आनेवाले आच्छादन (water proof covering) से अच्छादित किया जाता है। उस के बाद पूरा गर्भ-गृह, दीवार, जमीन तथा ऊपरी भाग अधिक गरम पानी से खूब साफ किया जाता है। तदनतर सर्वत्र कुकुम, कर्पूर, चदन, हल्दी इत्यादि से लेप किया जाता है। फिर मूलमूर्ति से अच्छादन हटाकर मूर्तियाँ, दीप और अन्य चीजो को गर्भ-गृह के अन्दर रखाया जाता है। मूलमूर्ति को पवित्र पूजाएँ समर्पित की जाती है और भोग लगाया जाता है।

यह पवित्र कार्यक्रम वर्ष में केवल चार बार मनाया जाता है- (१) युगादि के पूर्व (तेलुगु नूतन वर्ष), (२) मिथुन कटक सक्रमण के दिन (आणिवारि आस्थानम्) के पूर्व, (३) दिवाली के पूर्व (४) वार्षिक ब्रह्मोत्सव के पूर्व।

इस सेवा को मनाने केलिए सेवा की दर रु १,७४५/- है। १० लोगों को प्रवेश मिलेगा। कार्यक्रम के अत मे गृहस्थ को बडा, पापड, दोसै इत्यादि प्रसाद भी प्राप्त होगे। यह सेवा दैनिक पूजा कार्यक्रम के बाद प्रात ८ बजे सपन्न होती है। उस दिन भगवान का दर्शन दोपहर ३ बजे से चालू होगा।

कार्यनिर्वहणाधिकारी,

ति. ति. देवस्थान, तिरुपति

मराठी में प्रसिद्ध कहावत है, "जिचे हातीं पाल ण्याचीं दोरी ती जगातें उद्धरी" अर्थात् जिसके हाथ में पालने की डोरी है, वह सारे ससार का उद्धार करती है। आज की सुशिक्षित नारी को आडम्बरहीन होकर, समय तथा धन का अपव्यय न करते हुए त्यौहारो को मनाना और उसकी प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखना चाहिए।

यह मास माघ मास है। इस में मुख्य रूप से तीन त्यौहार मनाए जाते है जिनमें बसंत पंचमी, रथसप्तमी तथा महाशिवरात्रि है।

बसत पचमी :—

माघ शुद्ध पंचमी से बसंतोत्सव प्रारंभ होता है इसीलिए इसे बसंत पचमी कहते हैं। इस मास में सभी मदिरो में वाद्य, नृत्य, सगीत आदि का आयोजन कर उत्सव मनाया जाता है। भिन्न भिन्न स्थान के अनुसार उसके स्वरूप में भिन्नत्व है। दक्षिण भारत मे इस तिथि का विशेष महत्व नहीं है। बगाल में इसे श्री पंचमी कहते है तथा देवी सरस्वती की पूजा होती है।

माघ मास के उत्तरायण से बसंत का प्रारभ होता है इसी कारण बसंत पचमी बसत ऋतु की प्रारभिक तिथि मानी जाती है। बसत ऋतु सब ऋतुओ से उत्साहवर्धक है। सृष्टि अति रमणीय एव प्रमोद से भरी हुई दीख पडती है। भारत के कवियो ने इस ऋतु की महिमा का गान करने में अपनी वाणी को पवित्र किया है। संस्कृत साहित्य उसके सौरभ से सुवासित है। बसंत का अर्थ है—पक्षियों का कलरव, कोयल की मधुर कूक, आम्रमंजरी की सुगन्धि, शुभ्र अभ्रों की विविधता और चंचल पवन की स्निग्धता। बसन्त, प्रकृति माता के विकास की ऋतु है। सारे देशवासी प्रफुल्लित मन से सृष्टि सौन्दर्य को निहारने में तल्लीन हो जाते हैं। विवाह, उपनयन आदि समारोह इसी मास में आयोजित किए जाते हैं। विकसित पुष्पराशी, रंगबिरंगी तितलियाँ रसमय फल सब के मन की प्यास को मिटा देते हैं। इस दिन सभी को एक दूसरे के साथ परस्पर प्रेम और स्नेहपूर्ण व्यवहार करना चाहिए, यही उचित होगा।

आनंदकद भगवान श्रीकृष्ण तो इस उत्सव के साक्षात आदि देवता ही है। बसतपंचमी को उनका पूजन और श्री राधा माधव के आनंद विनोद का उत्सव ब्रजभूमि में इस अवसर पर विशेष रूप से मनाया जाता है। भगवान की आराधना तो मगलकारी है। परतु बसत पचमी पर उनकी आराधना और भी मंगलकारी होती है। आत्मीय सबंध विशेष रूप से मुखरित होते है।

तिरुमल मन्दिर मे विराजमान भगवान बालाजी

रथ सप्तमी :—

माघ शुद्ध सप्तमी को रथसप्तमी कहते हैं। इस दिन सूर्य देवता की पूजा होती है। सूर्य सब से श्रेष्ठ व तेजस्वी ग्रह है। उसके चारो ओर पृथ्वी और अनेक ग्रह फिरते रहते हैं। श्रेष्ठ ग्रह होने के कारण ही सूर्य की पूजा होती है। सूर्योपासना का मुख्य उद्देश्य है स्वास्थ्य व आरोग्य प्राप्त करना। इस सम्बन्ध में एक पौराणिक कथा प्रसिद्ध है। काभोज देश में यशोवर्मा नामक एक राजा थे। उसे वार्धक्यावस्था में एक पुत्र हुआ। वह बालक अत्यंत अशक्त तथा रोगग्रस्त था। अतः किस उपाय से बालक का स्वास्थ्य सुधर जाएगा इस बात की चिंता राजा को सताती थी। राजा ने अपनी चिंता ज्योतिष के सम्मुख व्यक्त की। तब ज्योतिष ने कहा नवग्रहों में श्रेष्ठ ग्रह जो सूर्य है उसकी कृपा दृष्टि के अभाव के कारण बालक अस्वस्थ है। अतः महासप्तमी के दिन व्रत उपवास रखकर सूर्य देबता की पूजा से उसे अपने अनुकूल बनाना चाहिए। राजा ने व्रतपालन प्रारंभ किया और परिणामतः राजकुमार की कांति तेजोमय बन गई।

भारत के भिन्न भिन्न प्रांतो में भिन्न नामों यह त्यौहार मनाया जाता है। बंगाल में इसे भास्कर सप्तमी कहते है, उत्तर भारत में इसे अचला सप्तमी कहते हैं। दक्षिण भारत में इसे रथ सप्तमी कहते हैं। यह दिन मन्वन्तर का प्रथम दिन है। अतः सूर्य भगवान की सवारी सात घोडों के रथ पर आरूढ होकर आकाश मार्ग से निकलती है। वेदकालीन इतिहास के आधार पर यह कहा जाता है कि माघ शुद्ध सप्तमी रथसप्तमी के रूप में मनाई जाती है।

इस त्यौहार को मनाने की पद्धति महाराष्ट्र, कर्नाटक, आध्र तथा दक्षिण के कुछ अन्य प्रांतो में है। उत्तर भारत में इस दिन कोई विशेष पूजा विधि नहीं होती। महाराष्ट्र तथा कर्नाटक में इस दिन प्रातः तुलसी बृदावन के सम्मुख साथ घोड़ो सहित सूर्य का चित्र रगोली से बनाते हैं। पास ही उपले जलाकर उस पर मिट्टी के छोटे पात्र में दूध गरम कर, अथवा खीर बनाकर, सूर्य देवता को भोग लगाया जाना ब्राह्मण तथा सुहागन को दान दिया जाता है। महाराष्ट्र मे पोष मास के प्रत्येक रविवार सूर्योदय के पूर्व ही सूर्यनारायण की पूजा की जाती है। रक्तचदन से सूर्य का चित्र निकालकर लाल रग के फूलो से पूजा की जाती है। रथसप्तमी मानो इस पूजा की समाप्ति है। नव-विवाहित वधू इस दिन नए धान, तिल, गुड, धनियो तथा फल आदि लेकर कम से कम पांच घरो में देकर आती हैं। तिल संक्रान्त के समान उस दिन भी हलदी कुकू का कार्यक्रम रहता। बगाल में कार्तिक पूर्णिमा तथा प्रति रविवार को प्रात सूर्य देवता की पूजा की जाती है। इसे 'ऐत पूजा' (आदित्य पूजा) कहते हैं। एक छोटे से मिट्टी के पात्र को लाल रंग लगाया जाता है, उस पर केले का पत्ता, पान का बीडा रखकर उस पर लाल रंग के फूल दूब तथा खीर रखते हैं। महिलाएँ पूजा पाठ के पश्चात् हलदी कुकू बाँटते हैं।

महा शिवरात्रि :—

हिन्दू धर्म के अन्तर्गत ब्रह्मा, बिष्णु तथा शिव यह तीनो मुख्य देवता के रूप में माने जाते है। इसीलिए भारत में वैष्णव संप्रदाय तथा शिव संप्रदाय को मानने वाले असख्य लोग है परन्तु ब्रह्मा की उपासना करनेवाला कोई संप्रदाय नहीं है। परंतु प्रत्येक शुभ-अशुभ कर्म के अन्त में

(शेष पृष्ठ २३ पर)

संतों के सब कार्यों का स्रोत भूत दया

सतो के सब कार्यो का स्रोत भूत दया है। इसी के हेतु उनके कार्यो का प्रसार होता है। वे मनुष्यो को दु ख से पीडित नही देख सकते। उनका चित्त कोमल होता है दूसरो के दुःख को देख कर द्रवित होता है अत उनके दु ख दूर करने के लिए वे प्रयत्न करते हैं। यह उनकी विभूति है।

इस दु ख विमोचन कार्य का मुख्यस्वरूप, मनुष्यो को परमार्थ-मार्ग का उपदेश करना है। उन्हे यह समझाना है कि ससार दुःख मूल है।

अनित्यमसुख लोकम्
इमं प्राप्य भजस्व माम्।

परन्तु उनका यह प्रयत्न विशेष रूप से यशस्वी नही होता क्योकि जन-साधारण सुख की कामना मे मतवाले होते है। वे दु ख भोगते हुए सुख-सुख रहते हुए मृत्यु के मुँह में प्रवेश करते है।

ते डूबकर सुख की कामना में हो गए
मतवाले।
वे दुःख भोगते सुख-सुख कहते होते मृत्यु
के निवाले॥

ऐसी स्थिति में भी सत सच्चे सुख अर्थात् ईश्वर साक्षात्कार का मार्ग मनुष्यो को बताते

श्री जगमोहन चतुर्वेदी.
हैदराबाद.

है। वे आत्मानुभव और आत्मानन्द का रस सब मनुष्यो को चखाने को बाँटते है। परन्तु इस रस को निज प्रयत्न से ही प्राप्त करना होता है। नारद मुनि के समान भूत दया से प्रेरित होकर परमार्थ-उपदेश का काम सत करते है। ईश्वर का आदेश भी कुछ सतो को इस कार्य को करने के लिए प्राप्त होता है।

तुकाराम कहते हैं—

"यह सरल सुख का मार्ग मनुष्यो को बताने के लिए ईश्वर ने मुझे आदेश दिया है, इस लिए ईश्वर के इस सुख-सदेश को बताने में मुझे भय और चिन्ता नही सताती। इस का उत्तरदायित्व भगवान पर है, मुझ पर नही। मै जो वचन कहता हूँ वे मेरे नही, भगवान के है। भगवान मुझ से कहलवाते हैं अत. इन वचनो की सत्यता के सम्बन्ध में मुझे कुछ भी संशय नही। सब प्राणियो में भगवान विराज-मान है।

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो

—गीता

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति

—गीता.

इस दृष्टि से मै मनुष्यो से मिलता हूँ। उन मे नर-नारी का भेद भी मुझे दिखाई नही देता अत मेरे वचनो द्वारा भगवान का प्रसाद लो और सच्चे अर्थ मे सुखी होवो इसी मे तुम्हारा कल्याण है। मुझे अपने और विदाने में कोई भेद नही दिखाई देता।

धर्म का पालन और पाखड का खडन कराना, भव ताप से तप्त मनुष्यो को सुखी कराना— यही मै करता आया हूँ। भक्ति के बढाने के इस काम को मै भगवान की पूजा समझ कर करता हूँ।"

संतों के प्रारब्ध कर्मों से पारमार्थिक उन्नतिः—

प्रारब्ध कर्मों का क्षय तो भोगने से ही होता है। अत जीवन मुक्त को भी जीवन पर्यन्त प्रारब्ध कर्म करने और भोगने पडते है। सतो के प्रारब्ध कर्म मे ससार की पारमार्थिक उन्नति होती है। जब तक यह शरीर है साधक भगवान के निकट जाने का सतत प्रयत्न करता है, परन्तु पूर्वत एक रूप नही होता, किंचित् अन्तर बना ही रहता है और इसे तोडने का उसका प्रयत्न चालू रहता है। इसके लिए स्वभावानुकूल कर्म भी चालू रहते है। संतो के ये कर्म ससार को परमार्थ का ज्ञान देने केलिए परमोपकारी होते है।

संतों का स्वार्थः—

सत ज्ञानेश्वर ने उसका सुबोध वर्णन इस प्रकार किया है

जैसे पाप-ताप को नाश करता
तीर के पादपों को सीचता
गंगा का जल समुद्र को जाता।
वैसे ही बधनों से मुक्तकरते
डूबते हुए को उवारने
पीडितों के संकट नष्ट करते।
दिन-रात जन हितार्थ प्रयत्न करते
जनता को सुख-उन्नति का मार्ग दर्शाते
संत अपने स्वार्थ की पूर्ति करते

[भावार्थ - पद्यानुवाद]

उपर्युक्त परम सुन्दर वचनो मे वर्णित भावो के अनुसार जीवन पर्यन्त नर को नारायण बनने अथवा व्यक्ति मात्र एव समाज को सुख-शान्ति प्राप्त कराने के व्रत पर सत आचरण करते है।

'अयमात्मा ब्रह्म'—

इस महावाक्य का सतत स्मरण दिला कर ईश्वर बनने का मार्ग दिखाने का महत्कार्य संत सहज ही करते है इसलिए उनके महत्त्व को जानने वाले अनेक महापुरुषो ने मुक्त कठ से तथा प्रेम कृतज्ञता और आदर से भरे हुए अंत करण से उनकी स्तुति के स्तोत्रो को रचकर गायन किया है। यदि सत न होते तो संसार मे सद्गुण और सच्चे सुख की फसल तैयार न होती।

ज्ञानेश्वर ने निम्न वचनो मे सतो के पुण्य-पावन दर्शन करवाए है

सत की भेट से आज मैं
चतुर्भुज बन गया
दोनों सूक्ष्म और दोनों स्थूल
भुजाओं ने विस्तार पाया॥

आलिंगन के सुख का अगाध अनुभव हुआ
प्रेम से चिदानंद हाथ आया
हर्ष से ब्रह्मांड पूरित हुआ
अहं ने समूल नाश पाया॥

सहृदय संत से भेटते ही
मिट जाती संसार की व्यथा सारी
इन संतों को नमस्कार करता
सतत बारंबार प्रणाम करता॥

दयालु संतों की देनगी
कल्पतरु से भी दुगुनी होती
पारस से भी अधिक अमित देनगी
चिन्ता मणि हीनता को प्राप्त होती॥

कृपालु सतों से बढकर उदार
त्रिभुवन में नहीं कोई
माता-पिता भाई-बंधु
इष्ट-मित्र सगे सबधी कोई॥

कृपा कटाक्ष से निहार कर
भक्तों को निज पद पद्मों में आश्रय दिया

श्री गोविन्दराज स्वामी के मन्दिर में संप्रोक्षण के अवसर पर पूर्ण कुंभ सहित श्री वेकटेश्वर स्वामी तथा श्री पार्थसारथी स्वामी की उत्सव मूर्तियां

रुक्मिणी देवी वर विठ्ठल ने
भक्तों को वरदान यह दिया ॥
[पद्यानुवाद]

साक्षात्कार का फल :—

साक्षात्कार के आनन्द से जीवन के तापत्र-यादि दोष, दुर्गुण जल कर भस्म हो जाते हैं तथा सब सद्गुण प्राप्त होते हैं। उच्चतम नैतिक ध्येय वाली स्थित-प्रज्ञता अगीभूत होती है। सब भूतो में आत्मभाव समता और विश्व-बधुत्व उत्पन्न होता है इसका परिणाम यह होता है कि उसके जीवन मे सब काम का एक ही हेतु शेष रहता है—

सर्वे सन्तु सुखिनः

सकुचित स्वार्थ का लेश मात्र स्मरण नही होता। उसे इस बात का ज्ञान हो जाता है कि एक ब्रह्म ही सत्य है, अन्य सब आभासमात्र है।

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या

इस अनुभव को प्राप्त करने के बाद विश्व की सब उलझनो और समस्याओ से वह मुक्त हो जाता है तथा परमाश्चर्य, भय, प्रेम, आदर, शरणागति इत्यादि महान् भावनाओ को जन्म देने वाले शिव से जीव एक रूपता को प्राप्त करता है।

यही मानवी जीवन की कृतार्थता, सार्थकता' और धन्यता है। स्वरूप साक्षात्कार के इस विवेचन मात्र को पढ कर कोई मनुष्य अपने ध्येय को प्राप्त नही हो सकता। ध्येय-प्राप्ति के लिए इस दर्शित मार्ग पर कष्ट, धैर्य और दृढता से स्वय प्रवास करना पडता है तब इसी शरीर मे, इन्ही आखो से मुक्ति का उत्सव देख कर अन्तिम दिवस मधुर होता है "मैं ने अपने प्रयत्न से महान फल प्राप्त किया है"— यह देख कर उसे कौतुक मालूम होता है। मुक्ति को वर कर साक्षात्कारी पुरुष जीवन मुक्त अवस्था मे अपना शेष जीवन अपने को मिला हुआ आनन्द ससार को मिल-जुल कर बाँटने मे व्यतीत करता है।

ऐसी अवस्था का अत्यन्त हृदयगम वर्णन तुकाराम ने किया है —

इस हेतु ही दृढ सकल्प किया था
अन्तिम दिवस मधुर होवे।
अब निश्चित ही भरोसा आया
तृष्णा का बंधन टूटा ॥

आश्चर्य होता मुझे सत मंडली का सदस्य बनने का
केवल मंगल नाम स्मरण के प्रसाद से।
'तुका' कहे मुक्ति नारी वाली
अब दिवस चार मिल-जुल कर आनद से खेलूँ ॥
[पद्यानुवाद]

पच दशी मे इस धन्यता का परमोज्वल मनोरम वर्णन देखिए —

"मैं सचमुच धन्य-धन्य हुआ हूँ। मुझे अपनी अविनाशी आत्मा का निश्चित ज्ञान प्राप्त हुआ है। आत्म साक्षात्कार हुआ है। ब्रह्मानद का स्पष्ट अनुभव कर रहा हूँ। ससार के दुःखो को देखते हुए भी मैं उनसे विरक्त हूँ। आत्म सबन्धी पहले का अज्ञान नष्ट हो गया। अब मुझे कोई कर्तव्य शेष नही। जो पाना था वह सब प्राप्त हुआ। मेरी इस तृप्ति को, इस पूर्ण समाधानता को बताने केलिए ससार मे कोई उपमा ढूँढे नही मिलती। मैं सच-मुच धन्यता को प्राप्त हुआ हूँ। पुन पुन मैं धन्यता को प्राप्त हुआ हूँ।"

धन्योऽहं धन्योऽहं नित्यं स्वात्मानमञ्जसा वेद्मि।
धन्योऽहं धन्योऽहं ब्रह्मानन्दो विभाति मे स्पष्टम् ॥

धन्योऽहं धन्योऽहं दुःखं सांसारिकं न वीक्षेऽद्य।
धन्योऽहं धन्योऽहं स्वस्याज्ञानं पलायितं क्वापि ॥

धन्योऽहं धन्योऽहं कर्तव्यं मे न विद्यते किंचित्।
धन्योऽहं धन्योऽहं प्राप्तव्यं सर्व मेव संपन्नम् ॥

धन्योऽहं धन्योऽहं तृप्तेर्मे कोपमाभवेल्लोके।
धन्योऽहं धन्योऽहं धन्यो धन्यः पुनः पुनर्धन्यः ॥

पचदशी—ब्रह्मानदे विद्यानदप्रकरणम्
[१४-५८-६२]

साभार १) श्री ग. वि. तुल पुल
२) डा. रा. द. रानडे ✡

कलियुगवरद सप्तगिरीश्वर का पवित्रोत्सव

छठ १९ का शेष)

ब्रह्मा को ही समर्पित हो जाते है। गीता में (अध्याय १७ - २३) तथा अन्य तात्विक ग्रंथों के आधार पर यह कहा जाता है कि प्रत्येक कर्म के अन्त में "ओम् तत्सद ब्रह्मार्पणमस्तु" नाम से संबंध किया जाता है। ब्रह्मार्पण के बिना कोई भी धर्म कार्य पूर्ण नहीं होता।

प्रत्येक देवता की उपासना और उत्सव मनाने का एक विशेष दिन निश्चित किया गया है। श्रद्धा, भक्तियुक्त अन्तःकरण से शिव की उपासना का दिन है माघ वद्य चतुर्दशी (१४)। इस दिन को शिवरात्रि कहते हैं। शिवरात्रि की उत्पत्ति, व उसके विकास का ज्ञान हमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, उपनिषद्, महाभारत, पुराण तथा वेदों से प्राप्त होता है। ईशान संहिता के अनुसार :—

शिवरात्रि व्रतं नाम सर्व पाप प्रणाशनम् ।
आचाण्डाल मनुष्याणां भुक्ति मुक्ति प्रदायकम्।।

इस श्लोक के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अछूत, स्त्री, पुरुष और बालक, युवा तथा वृद्ध इस व्रत को कर सकते है। प्राणियों में दया तथा स्नेह भाव बनाए रखने के लिए शिवरात्रि त्यौहार का बड़ा महत्व है। शिवरात्रि व्रत के सम्बन्ध में अनेक कथाएं और उपकथाएं प्रचलित हैं। शिवरात्रि व्रत महान तथा सर्वश्रेष्ठ व्रत हैं। ब्रह्मा ने नारदमुनि से कहा था, "शिवरात्रि व्रत में भुक्ति तथा मुक्ति प्रदान करने वाले चार प्रमुख तत्व हैं। प्रथम शिवलिंगपूजन, द्वितीय महारुद्र जाप, तृतीय शिवरात्रि व्रत चतुर्थ काशी में देह त्याग। इस व्रत को करने से शिव जी अत्यत प्रसन्न होते हैं तथा यह व्रत उन्हें गौरी समान प्रिय है।

शिवरात्रि व्रत की उत्पत्ति, महत्व तथा परंपरा इस प्रकार है। प्रलय के पूर्व भगवान श्री विष्णु शेषशायी शय्या पर लेटे हुए थे। शिव जी ने चारो ओर अपनी माया जाल फैला दिया। इस माया से एक चमत्कार हुआ। भगवान विष्णु को शेष शय्या पर विश्राम करते हुए देख ब्रह्मा बहुत ही क्रोध में आए, अहंभाव से युक्त होकर विष्णु से कहने लगे; मैं सृष्टि का निर्माण-कर्ता, त्रैलोक्य में श्रेष्ठ, अखिल ब्रह्माण्ड के आदि कारण स्वरूप में "परब्रह्म" हूँ अतः मेरा अनादर कर मुझे अपमानित कर रहे हो "शिव जी के मायाजाल के परिणामस्वरूप, विष्णु भी अहंभाव से कहने लगे," मै परब्रह्म हूँ, तुम्हारा पिता हूँ मेरी नाभि-कमल से तुलसी तुम्हारी उत्पत्ति हुई है। अत हे बालक अपने मन से गर्व की भावना को दूर कर दो।

दोनों देवता में महानता को लेकर इतना विवाद हुआ कि अत में युद्ध ही हुआ। भगवान विष्णु ने "महेश्वर बाण छोडा तो ब्रह्मा ने पाशुपत-अस्त्र" छोडा। शस्त्रों की ध्वनि से चारों ओर, सारे ब्रह्माण्ड में भय का तूफान उठ गया। सभी देवता भयभीत हो गए। इस भयानक युद्ध को समाप्त करने के लिए शिवजी, जिस का आदि व अंत नहीं ऐसे ज्योतिर्मय अग्निस्तंभ के रूप में प्रकट हुए। इस तेजस्तंभ के प्रकट होते ही सभी शस्त्रो का नाश हुआ। विष्णु तथा ब्रह्मा दोनों स्तंभित हो गए। उन्होने यह निश्चय किया कि इस ज्योतिर्मय स्तंभ के आदि व अंत की खोज जो पहले करेगा, वह महान माना जाएगा।

विष्णु तथा ब्रह्मा दोनों आदित्व अंत की खोज करने निकल पडते है। एक वर्ष तक घूम फिर कर भी खोडा कार्य में असफल हो जाते है। भगवान विष्णु ने सारी स्थिति को सत्य रूप में प्रकट किया परंतु ब्रह्मा इस प्रकार से कहना अपना अपमान समझते थे। अत उन्होने असत्य कहा और अपनी इस असत्य बात को प्रमाणित करने के लिए गवाह के रूप में कामधेनु तथा केतकी बृक्ष को ले आते है। परतु अतर्यामी भगवान इसे जान लेते है और ब्रह्मा, कामधेनु तथा केतकी को शापद देते है कि, ब्रह्मा की उपासना नहीं होगी, कामधेनु ने जिस मुख से असत्य कहा, उसकी पूजा नहीं होगी, पूँछ की पूजा होगी तथा केतकी का पुष्प शिवजी पर कभी नहीं चढेगा।

शिवरात्रि महिमा के सम्बन्ध में दूसरी जो कथा प्रसिद्ध है वह इस प्रकार है। एक सघन वन में एक सुन्दर जलाशय था, जिसके किनारे पर एक बेल का पेड था। उसकी जड में भगवान शंकर की एक पाषाण प्रतिमा सुशोभित थी। उस जंगल में रोज उस तालाब पर पानी पीने जाते और उस बेल वृक्ष के नीचे विश्राम करते। एक दिन व्याध उस स्थान पर शिकार करने आता है। अपने परिवार का पेट भरने के लिए पशुमांस चाहता था। इसलिए वह बेल के पेड़ पर चढ कर बैठ गया और हिरणों की प्रतीक्षा करने लगा। रात हुई, इतने में बो-चार हिरण आए। व्याध ने उन्हे देखकर धनुष पर बाण चढाया। व्याध के चढे हुए बाण को देखकर उन में से एक हिरण ने व्याध से कहा, आप बाण न चढाएँ, हम आपकी सेवा के लिए तैयार है, यदि आप हमें इतना अवकाश दें कि हम एक बार अपने बच्चों को देख आएं। फिर यहां आकर आत्म समर्पण कर देंगे। व्याध को इस बात पर हंसी आई, हाथ आए शिकार को छोड़ देना क्या बुद्धिमानी है, मेरे बाल बच्चे भूख से तड़प रहे होंगे। हिरणो ने कहा जैसे तुम्हे अपने बच्चो की याद सताती है, वैसे हमारी भी स्थिति है। व्याध ने पशुओं की इमानदारी की और वचन पालन की परीक्षा लेनी चाही और उन्हे घर जाने की अनुमति प्रदान की। सूर्योदय से पूर्व लौट आने के लिए कहा। तत्पश्चात व्याध उस पेड़पर बैठकर बेल पत्र तोडकर नीचे डालता गया जो शिव के मस्तक पर गिरते जा रहे थे।

हिरण अपने बाल बच्चो से विदा लेकर सूर्योदय से पहले व्याध के पास आ पहुँचे। पीछे पीछे उनके बच्चो भी आ पहुंचे। हिरणों ने आगे बढकर व्याध से कहा, "व्याध, हम आ गए। मोह के कारण हमारे बच्चे भी आए उन्होंने प्रसन्नता से हमें बिदा दी है, अतः आप हमें मारकर अपने बच्चो की भूख मिटा दीजिए।" किन्तु इसी बीच भगवान् शंकर ने व्याध की पाप वृत्ति को हरण कर लिया था। हिंसा के स्थान पर दया आयी और व्याध ने मूक पशुओ के बचन पालन करने की मर्यादा को देखकर, उनका आदर किया। व्याध की सद्-भावना को देखकर भगवान् शंकर प्रसन्न हुए और उन्होने व्याध को आशीर्वाद दिया कि तुम सुख-समृद्धि से युक्त और मृत्यु के भय से मुक्त हो जाओगे सदैव प्राणिमात्र पर दया करते रहो।

शिव का वरदान पाकर वह व्याध अपने घर लौट आया और हिंसा वृत्ति त्याग कर प्राणी मात्र की सेवा में तत्पर हो गया। यही शिव-रात्रि के व्रत का परिणाम है जिस से मनुष्य सालोक्य, सामीप्य तथा सायुज्य मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

भारतीय परिवेश में उसकी संस्कृति को, संस्कारों व परम्पराओं को मूल रूप में जीवित रखने के लिए इन पर्वों व त्यौहारों को स्वीकार मिलनी चाहिए। इसका सम्पूर्ण दायित्व नारी वर्ग पर है। वह उनकी प्रतिष्ठा का निर्वाह कर रही है। ★
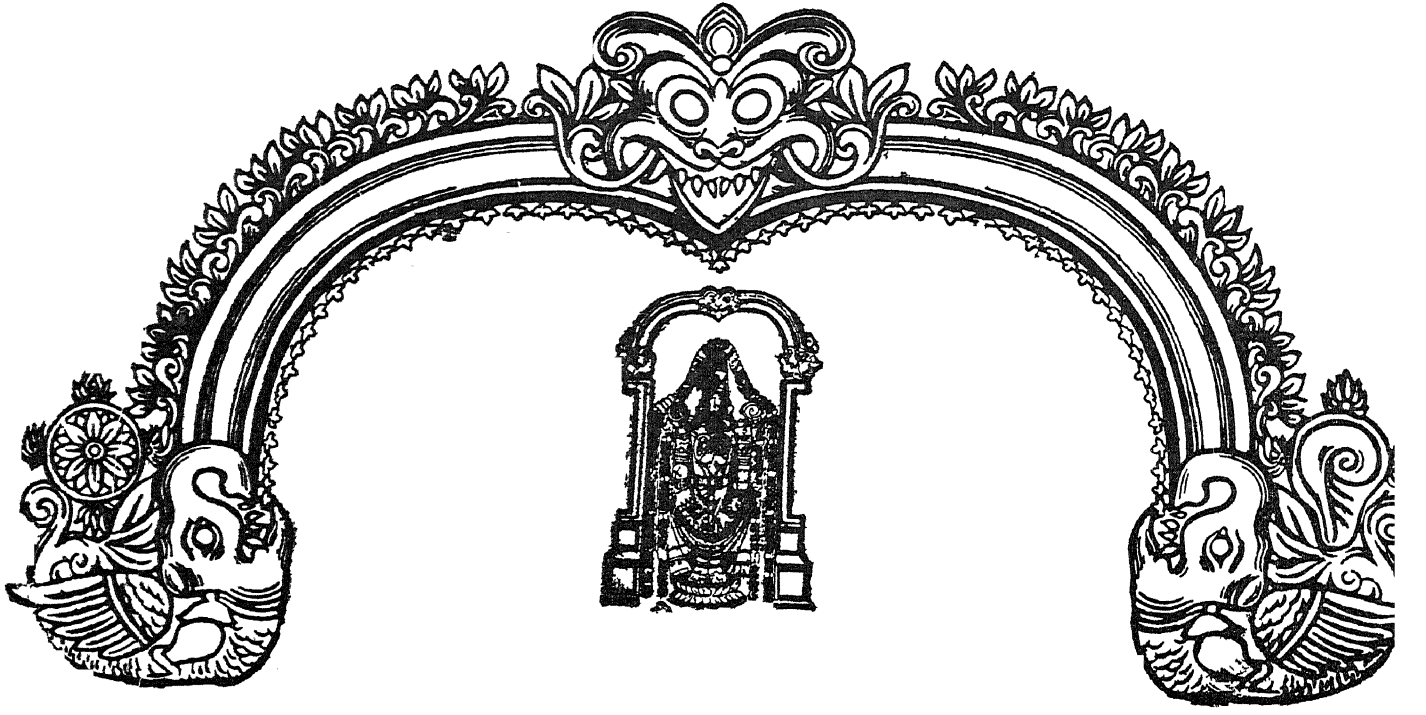
तिरुपति तथा तिरुमल यात्रा की यातायात - सुविधाएँ

भारत के किसी भी रेल्वे स्टेशन से तिरुमल तक रेल के सीधे टिकेट खरीदे जा सकते हैं। तिरुपति तक सीधी रेलगाडियों का प्रबंध भी है। जैसे कि मद्रास से (सप्तगिरि एक्सप्रेस, बडी लाइन), विजयवाडा से (तिरुमल एक्सप्रेस, बडी लाइन), काकिनाड़ा से (पेसजर गाडी बडी लाइन), हैदराबाद से (वेंकटाद्रि एक्सप्रेस, छोटी लाइन और रायलसीमा एक्सप्रेस, बडी लाइन), तिरुचिनापल्लि से (फास्ट प्रेसंजर गाडी, छोटी लाइन) पाकाला, काट्पाडि, रेणिगुण्टा तथा गूडूर जैसे रेल्वे जंक्शनों से तिरुपति तक सुविधाजनक मिली जुली रेलों का प्रबंध है। भारत के किसी भी रेल्वे स्टेशन तक जाने केलिए तिरुमल से ही वापसी यात्रा का टिकेट भी खरीद सकते हैं।

मद्रास तथा हैदराबाद से तिरुपति तक नियमित विमान सेवा का प्रबंध है और हवाई अड्डे से उन यात्रियों को तिरुमल तक ले जाकर फिर वापस लाने केलिए एक विशेष बस का प्रबंध भी है। सुदूर प्रदेशों से रेल या बस से आनेवाले यात्रियों को तिरुमल पहुँचाने केलिए लिंक बसों का भी प्रबंध है। प्रातः काल से लेकर रात देर तक तिरुपति-तिरुमल के बीच हर ३ मिनट पर लगातार चलनेवाली बसों का प्रबध है। ए. पी. एस. आर. टी. सी. शाखा द्वारा तिरुपति - तिरुमल के बीच कान्ट्राक्ट कारेज बसों का प्रबध भी है। इस में एक ट्रिप केलिए रु. १२५ देकर ४५ यात्री जा सकते हैं। तिरुपति से तिरुमल तक पैदल दो रास्ते भी हैं जो भव्य सुंदर सात पहाडियों से होते हुए हैं। अनेक यात्रीगण अपनी मनौती के रूप में पैदल रास्ते से आनंद उठाते जाते हैं।

तिरुपति से तिरुमल तक दो घाटी रोड हैं जिन में से एक तिरुमल जाने केलिए द्वितीय तिरुमल से लौटने केलिए हैं।

व्यक्तिगत कारों के लिए भी तिरुमल पर जाने की अनुमति है। यहाँ पर टेक्सियाँ भी मिलती हैं।

कार्यनिर्वहणाधिकारी,

ति. ति. देवस्थान, तिरुपति.

मीरा और आण्डाल के पदों में नवधा - भक्ति का स्वरूप

भारतीय कृष्ण - भक्ति काव्य - जगत में मीरा और आण्डाल का विशिष्ठ स्थान है। दोनो सव श्रेष्ठ कृष्णभक्त कवयित्रियाँ है। माधुर्य भक्ति रस धारा को प्रवाहित करने मे दोनो का योगदान अनुपम है। दक्षिण के प्रसिद्ध वैष्णव भक्त आलवारो की श्रेणी में आण्डाल का नाम आता है, तो हिन्दी साहित्य की कृष्ण भक्ति शाखा के विख्यात भक्त कवियो की श्रेणी मे मीराबाई का।

आण्डाल का आविर्भाव आठवीं शताब्दी में तथा मीरा का पन्द्रहवीं शताब्दी मे हुआ। फिर भी दोनो की भक्तिसाधना मे एक ही मनोभाव परिलक्षित होता है। दोनो की आत्मा में चिरन्तन कृष्ण का निवास है। उनमे उस आध्यात्मिक प्रियतम के विरह को आकुलता और दर्शन की उत्कट अभिलाषा एक जैसी है— इसी माधुर्य रस के धरातल पर दोनो कवयित्रिया अलौकिक भक्तो की श्रेणी मे महत्वपूर्ण स्थान पा चुकी है।

आण्डाल के जन्म के बारे मे यह जनश्रुति प्रचलित है कि प्रसिद्ध कृष्ण-भक्त पेरियालवार, जो विष्णुचित्त के नाम से प्रसिद्ध थे, निस्सन्तान थे। एक दिन तुलसीदलों को तोड़ते हुए अपनी पुष्पवाटिका मे आपने एक छोटी - सी बालिका को जमीन पर पडे देखा। भक्त पिता के निर्देशन में फूल सदृश कोमल बालिका गोदा भी बचपन से ही कृष्णप्रेम की ओर आकृष्ट हुई तथा पिता के साथ पुष्पवाटिका से फूल लाकर माला गुंथा करती थी। तभी से वह कृष्ण को अपने पति रूप म वरण कर चुकी थी। इसलिए हर रोज भगवान को माला भिजवाने के पहले, अपने पिताजी की नजर बचाकर वह स्वयं उस माला को पहना करती और उसके मन में यह सशय उठता रहता कि वह भगवान की योग्या पत्नी हो सकती कि नहीं। एक दिन उस माला मे चिपके सिर के एक बाल से श्रीविष्णुचित्त इस रहस्य से अवगत हो गये, जिससे वे भारी व्यथित हुए। परन्तु आपके स्वप्न मे दर्शन देकर भगवान ने यो आदेश दिया कि वे गोदा की पहनी माला ही पहनेंगे और आपने श्रीविष्णुचित्त को गोदा के जन्म का रहस्य वतलाया। गोदा और कोई नही, पृथ्वी माता ही थी और विष्णु के वामनावतार के समय पृथ्वी माता ने उनकी पत्नी होना चाहा था। भगवान ने उसे श्रीविष्णुचित्त की बेटी के रूप मे अवतार लेकर पूजा, अर्चना और वन्दना के द्वारा अपनी प्राप्ति का सुज्ञान दिया था। अपनी बेटी गोदा की ऐसी महत्ता जानकर, और भगवान का सौलभ्य प्राप्त कर, पेरियालवार (विष्णुचित्त) फूले न समाये।

गोदा श्रीरंगनाथ के रूप मे श्रीकृष्ण की भक्ति में तन्मय होकर उनसे मिलन न हो सकने के कारण अपने वियोग दुख को तरह - तरह से अभिव्यक्त करने लगी। उसके पारलौकिक प्रेम से वशीभूत श्रीरंगनाथ भगवान ने विष्णुचित्त को आदेश दिया था कि गोदा को वे मंदिर में ले आकर विधिवत् भगवान से विवाह करा दे। स्वय गोदा ने भी रंगनाथ के साथ पाणिग्रहण की सारी आयोजना स्वप्न मे देखी थी। कहा जाता है कि मंदिर से, भगवान की तरफ से, गोदा को ले जाने के लिए पुजारी गाजे बाजे के साथ पालकी वगैरह आये और मंदिर मे प्रवेश करते ही गोदा श्रीरंगनाथ की प्रतिमा मे मिलकर संसार की नजरो से अदृश्य हो गयी तथा उसने 'आण्डाल' नाम प्राप्त किया।

उत्तर भारत की कृष्ण भक्त कवयित्री मीरा का जन्म सवत् १५५५ के आसपास राठौडों की मेडतिया शाखा के प्रवर्तक राव दूदाजी के वंश मे हुआ था। मीरा के व्यक्तित्व पर सर्वाधिक छाप उनके पितामह रावदूदाजी की पडी थी। यही कारण है कि मीरा प्रारंभ से ही गिरिधरलाल कृष्ण की उपासिका बन गयी थी। उसका विवाह उदयपुर के महाराणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र कुंवर भोजराज के साथ हुआ था। सासारिक दृष्टि से यद्यपि भोजराज पति रहा, फिर भी मीरा गिरिधरलाल को ही अपने पति के रूप मे ग्रहण कर चुकी थो। वह ससुराल मे भी दिवा रात्रि कृष्ण की उपासना, भजन आदि में लगी रहती थी। कुछ ही दिनो मे उसके सासारिक पति की मृत्यु हो गयी। उसके पश्चात् मीरा एकदम गिरिधरलाल की सेवा में तल्लीन हो गयी। वह साधु सतो के संग बैठकर गाया और नाचा करती थी और ससुरालवालो को उसका यह आचरण राजकुल की मर्यादा के विपरीत लगा और वे उसे अनेक प्रकार से तग करने लगे। अपनी कृष्णभक्ति मे बाधा पडते देखकर, कहा जाता है कि मीरा में अपने समकालीन कवि - भक्त शिरोमणि तुलसीदास से सलाह मागी थी और तुलसी ने जवाब में पत्र लिखकर यों समझाया था—

" जाके प्रिय न राम वैदेही
तजिये ताहि कोटि वैरी सम।
जद्यपि परम सनेही ॥ "

मीरा ने तुरन्त ही घर - बार त्याग दिया और अपने इष्टदेव की लीलाभूमि बृन्दावन और मथुरा में कुछ दिन निवास करके द्वारिका गयी

श्री आण्डाल उत्सव, तिरुपति

गोदा
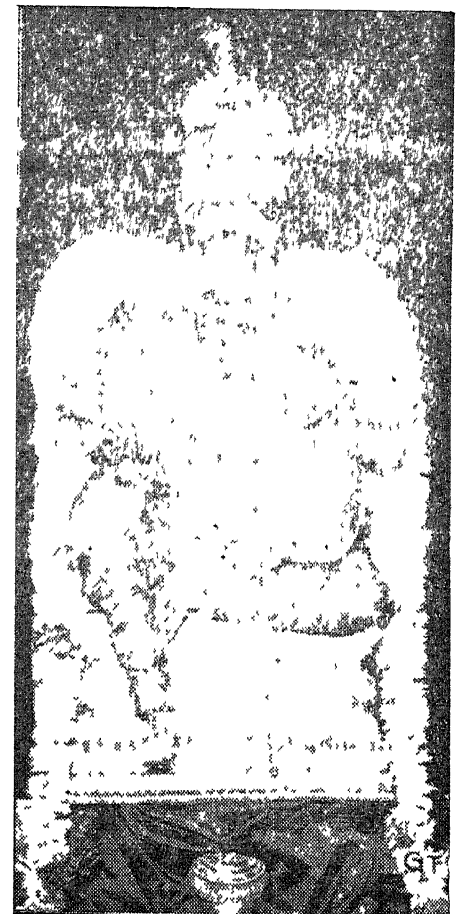
विष्णुचित्त की बेटी तू है
विष्णु चिन्त मे रहती तू है
विष्णु चित्त को खुश करती है
विष्णु चिन्त को जानती तू है।
नन्दनवन में तू मिली गोदे,
भक्तगणों को सबकुछ तू दे
धन्य हुए थे विल्लि पुत्तर के
पाकर तुझे नर विविध प्रकार के।
विष्णुचित्त उद्यान गए थे
वे तुझे देख वहाँ मुग्ध हुए थे
उन्होंने तुझको भाग्यफल समझा
अपनेको तेरा पिता तब समझा।
पिताके साथ थी तू बन जाती
तुलसी लाने रोज हर्षाती
फूलो की माला तू ही बनाती
थी उसे रंग को अर्पित करती।
विष्णुभक्ति के अन्न को खाकर
तू बढी अहो सुखकर भूपर

जिसने तेरा दर्शन किया था
उसने खुद को भाग्यवान माना।
एक बार तू मन्दिर गई थी
रंगनाथ को देख हर्षाई
उसकी तू ने वरपति माना
उसकी स्तुति मे निकला गाना।
जब बनगई तू सुन्दर युवती
देख तुझे नव लज्जित हुई रति
विष्णुचित्त तब सोचने लगे थे
"किसको दूँ इसे परिणय में मै"
विष्णुचित्त की चिन्ता जानकर
गोदा बोली स्वर मे मधुर
"जनक! मुझे दो रंगपुरीश को
चिन्त छोड उसे दामाद मानो।
बेटी के सुन वचन असाध्य
पाया जनक ने दुःख असाध्य

रंग ने स्वप्न में आकर कहा था
मुझसे सुता को कराओ सनाथा।
शिरोधार्थ मान रंग का आदेश
पिता ने सुनाया हर्षद सन्देश
इसी समय में रंजक रंग के
विराजमान थे सम्मुख वधू के।
वेदविदों ने मन्त्र सुनाए
हितकर मगलवाद्य बजे थे
देवगणों ने फूल बरसाए
वन्दीगणों ने गाने सुनाए।
लज्जा से नत मुख को धर कर
प्यारे पिता की आज्ञा पा कर
रंगसमुद्र में गोदासरिता
लीन होगई सब को सुखदा।

श्री के. एन. वरदराजन्, एम. ए.,
कल्पाक्कम्।

और जीवन के अंतिम क्षण तक वहीं रहीं।

कहा जाता है कि गोपिका राधा की यह इच्छा बनी रही कि विरह-प्रेम का अनुभव उसे प्राप्त हो। उसकी इच्छा-पूर्ति के लिए भगवान ने उसे मीरा के रूप में अवतार लेने का आदेश दिया था।

आण्डाल और मीरा के जीवन वृत्त के उपर्युक्त विवरण से जान पडता है कि दोनो का जीवन असामान्य था, और उनकी भक्ति अलौकिक

आण्डाल द्वारा बिरचित दो ग्रन्थ बताये जाते है — तिरुप्पावै और नाच्चियार तिरुमोलि। 'तिरुप्पावै' ३० सुन्दर पदो का एक मुक्तक काव्य ग्रन्थ है, जिसमे कात्यायनी व्रत के अनुकरण में मार्गशीर्ष व्रत के रूप मे, श्रीकृष्ण से गोपियो की प्रार्थना का वर्णन है। 'नाच्चियार तिरुमोलि' में १४३ पद है जिनमे विरहिणी आण्डाल की व्याकुलता और श्रीकृष्ण मिलन की तीव्रता अभिव्यक्त है।

मीरा की रचनाओ के निम्नलिखित नाम मिलते है—

नरसीजी से माहेरो
गीतगोविन्द की टीका
राग गोविन्द
स्फुट पद
मीरानी गरबी

मीरा और आण्डाल ने भक्ति की चरमावस्था मे जो गीत गाये है, उनमे नवधा भक्ति या रागानुगा भक्ति का पूरा स्वरूप दिखलायी देता है।

नवधा भक्ति के सम्बन्ध मे यह बताया जाता है —

श्रवण कीर्तन विष्णो स्मरण पादसेवनम्
वदन अर्चन दास्य सख्य आत्मनिवेदनम्

श्रवण भक्ति परीक्षित में, कीर्तन भक्ति, नारद जैसे महर्षियों मे, स्मरण भक्ति प्रह्लाद में, पादसेवन महालक्ष्मी में, वन्दना भक्ति अक्रूर में, दास्य भक्ति श्री हनुमान मे, सख्य भक्ति अर्जुन मे, और आत्मनिवेदन का भाव महाबलि में मुख्य रूप से पाया जाना है। परन्तु मीरा और आण्डाल की उपासना मे उक्त सभी प्रकार के भक्ति भावों की अभिव्यक्ति एक साथ हुई है।

दोनों कवयित्रियाँ अपने बाल्यकाल से भगवद् कीर्तन और भगवद् महिमा का श्रवण करती रहती थीं।

तभी से दोनो लोगो के संग मिलकर और स्वय भी पद रचना करके गाया करती थी और यहाँ से उनकी कीर्तन-सेवा भक्ति उत्तरोत्तर बढती गयी।

स्मरण-भक्ति तो आरंभ से अब तक, सोते जागते, हर समय दोनों करती ही रहीं।

श्री वेङ्कटेश्वरस्वामीजी का मंदिर, तिरुमल.

अर्जित सेवाओं की दरें

I श्री बालाजी के दर्शन: –

१	प्रत्येक आरती के लिये	रु 1	२	तोमालसेवा के बाद दर्शन	रु 4
३	अर्चना के बाद दर्शन	4	४	एकान्तसेवा के बाद दर्शन	4
५	पूलगिसेवा के बाद दर्शन	4	६	अभिषेक के बाद दर्शन	4

विशेष दर्शन रु. 25–00

सूचना — उपरिलिखित सेवाओ के लिए एक टिकट के द्वारा एक ही दर्शनार्थी भगवान का दर्शन प्राप्त कर सकेगा ।

II सेवाएँ :–

१	अमन्त्रणोत्सव	रु 130	७	जाफरा बरतन (Vessel)	रु 100
२	पूलगि	60	८	सहस्रकलशाभिषेक	2500
३	पूरा अभिषेक	450	९	अभिषेक कोइल आलवार	1745
४.	कर्पूर बरतन (Vessel)	250	१०	तिरुप्पावडा	5000
५	पुनुगु तेल का बरतन (Vessel)	100	११.	पवित्रोत्सव	1500
६	कस्तूरि बरतन (Vessel)	100			

सूचना – सेवासंख्या१ — इस सेवा में छे व्यक्ति ही दर्शन प्राप्त कर सकेंगे । जिस दिन प्रात. काल तोमाल सेवा और अर्चना की है केवल उसी दिन रात में एकान्तसेवा के लिए भी भक्त दर्शनार्थ जा सकते है ।

सेवा क्रमसंख्या २–यह सेवा केवल गुरुवार की रात को मनायी जाती है । केवल 2 व्यक्ति ही दर्शन पाप्त कर सकेंगे ।

सेवा क्रमसंख्या ३–७ — केवल शुक्रवार को मनायी जाती है । इन सेवाओ के लिए प्रवेश इस प्रकार होगा —

क्रमसंख्या ३ – गिन्ने के साथ केवल २ व्यक्ति ।
४ – गिन्ने के साथ केवल २ व्यक्ति ।
५ – ७ – गिन्ने के साथ केवल एक व्यक्ति ।

सेवा क्रमसंख्या ८ – १० – प्रत्येक सेवा सम्पूर्ण दिन का उत्सव है । सेवा करानेवाले भक्त को प्रसाद दिया जायगा, जिस मे बडा, लड्डू, पापड, दोसा इत्यादि होगें । इस के अतिरिक्त सेवा न ८ के लिए वस्त्र भी भेंट के रूप मे दिया जायगा । सहस्र कलशाभिषेक, तिरुप्पावडा तथा पवित्रोत्सव सेवाओ मे हर एक सेवा को १० व्यक्ति जा सकते है ।

साधारण सूचना –रिवाजो के अनुसार दातम (Datham) और आरती के लिये एक रुपये का अतिरिक्त शुल्क अदा करना पडेगा ।

III उत्सव —

१.	वसन्तोत्सव	रु 2000	३	ब्रह्मोत्सव	रु 750
२.	कल्याणोत्सव	1000	४.	प्लवोत्सव	रु १५००

सूचना – १ वसन्तोत्सव – जो भक्त वसन्तोत्सव मनाना चाहते है उनकी सुविधा के अनुसार और मंदिर की सुविधा के अनुसार यह उत्सव तीन दिन अथवा उससे कम दिना मे मनाया जायगा और उन्हे वस्त्र पुरस्कार मिलेगा ।

२ ब्रह्मोत्सव .– इस उत्सव को जो यात्री मनाना चाहते है अपने साथ ६ साथियो को ला सकते है, तथा नामाल्सेवा, अर्चना और गान को एकान्तसेवा में भाग ले सकते है। यह उत्सव तीन दिन तक अथवा उससे कम दिनो में यात्री की सुविधा के अनुसार और मंदिर की सुविधा के अनुसार मनाया जायगा । उत्सव के दिनो मे उस के मनानेवाले को पोंगल और दोसा इत्यादि प्रसाद भी दिये जायेंगे । उत्सव के अन्त मे वस्त्र पुरस्कार दिया जायगा ।

३ कल्याणोत्सव या श्रीस्वामीजी के विवाहोत्सव के अन्त मे वस्त्र पुरस्कार और लड्डू, बडा, पापड, दोसा आदि नियमानुसार प्रसाद के साथ दिये जायेंगे ।

IV वाहन सेवाएँ :–

१ वाहन सेवा सर्वभूपाल वज्रकवच सहित ७२+१ (आरती) रु 73

२ वज्रकवचसहित वाहनसेवा स्वर्ण गरुडवाहन, कल्पवृक्ष, बडा शेषवाहन, सर्वभूपाल, सूर्यप्रभा, प्रत्येक ६२+१ (आरती) 63

३ चाँदी गरुडवाहन, चन्द्रप्रभा, गज (हाथी) वाहन, अश्ववाहन, सिंहवाहन, हंसवाहन, प्रत्येक ३२+१ (आरती) 33

सूचना – वाहनसेवा मनानेवाले गृहस्थ को प्रसाद मे एक बडा दिया जायगा ।

साधारण सूचना .– न ३ और ४ के लिये दातम और आरती के लिये समय और रिवाजानुसार एक एक रुपये का अतिरिक्त शुल्क अदा करना होगा ।

V भगवान को प्रसाद (भोग) समर्पण (१/४ सोला) : –

१ दद्दीभात	रु 40	४ शक्करपोंगलि	रु 65	७ शक्करभात	रु 8[illegible]
२ बघार भात	50	५ केसरीभात	90	८ शीरा	.. 155
३ पोंगलि(घी और मिर्चभात)	55	६ पायसम (खीर)	... 85		

सूचना :—भोग के बाद प्रसाद भक्त को दिये जायेंगे । भोग के बाद अपने प्रसादो को भक्त लोग आकर अपने बर्तन मे स्वीकार करेंगे ।

VI पक्वान्नो की भेंट —

१ लड्डू	रु 450	४ दोसे	रु 100	७ सुखी	रु 200
२ बडा	250	५ पापड	230	८ जिलेबी	450
३ पोली	. 225	६ तेनताल	200		

सूचना —जो गृहस्थ उपर्युक्त पक्वानो की भेंट देते है उन्हे भोग के बाद ३० पनियारम दिये जायेंगे । प्रसाद-पन्यारम को गृहस्थ स्वय आकर मन्दिर से ले जा सकते है । भोग के बाद मन्दिर की दूसरी घंटी बजते ही प्रसाद पन्यारम दिया जायगा ।

VII नित्य सेवाएँ :—

१ नित्य कर्पूर हारता रु 21 २. नित्य नवनीत आरती रु 42 ३ नित्य अर्चना रु 42

सूचना .—नित्य सेवाओ के लिये प्रथम वर्ष मे अतिरिक्त रूप से देय शुल्क वर्ष के पहले हर एक सेवा के लिए अग्रिम के रूप मे देना पडेगा । जो भक्त इन नित्य सेवाओ को मनाते है उनको भगवान के दर्शन केलिए प्रवेश नही मिलेगा । भक्तो की अनुपस्थिति मे ही उनके नाम पर इन सेवाओ को सपन्न किया जायगा ।

(पृष्ठ ११ का शेष)

अत्येष्टि तक के सोलहो सस्कारो में से उपनयन तक के सस्कार बाल्य काल के हैं। तब तक जन्म से सभी समान है। उपनयन से द्विजत्व को प्राप्त करके आदमी अपने वर्ण के अनुरूप शिक्षा प्राप्त करता है। विद्यार्जन के समय वह गुरुकुल में रहकर, कठोर ब्रह्मचर्य जैसे व्रतो का पालन करके, समाज में भिक्षा लेता, सहनशील होकर अगले आश्रम में प्रवेश पाने लायक सभी गुणो से अपने को सुसज्जित कर लेता है। गार्हस्थ्य में अग्निहोत्र जैसे संस्कारों का पालन पति - पत्नी दोनो के द्वारा होता है। यहां विधि-निषेध भी कई हैं। अग्नि - होत्र, यज्ञ, तप, दान आदि के द्वारा आदमी ऋषि, देव, पितृ, समाज (मानव), और भूत (जीवकोटि) के ऋणो से मुक्थ होता है। अतिथि-सत्कार, गुरु - सम्मान देवताराधन, अहिंसा, सत्य, शौच, प्रियवादिता, संयमन, तपस्या और स्मृतुक्त धर्माचरण से वह अपने गार्हस्थ्य को पुनीत करके, पुत्रोत्पादन से प्रजातंतु को अविच्छिन्न रखता है। विवाह का यही पुत्र रति - फल बताया गया है। वानप्रस्थ में आदमी पत्नी के साथ ब्रह्मचर्य का पालन करता, जगलो में रहकर तपस्या और सदाचार का व्रत अपनाता है। सन्यास के विधि निषेध भी अलग बताये गये है। सन्यासी इह में रहकर पारलौकिक का सा व्यवहार सर्वसंग परित्याग के द्वारा प्राप्त करता है। विश्व-श्रेय की कल्पना और आत्मानुसधान ही उसके कर्तव्य अथवा लक्ष्य होते है।

पुरुषार्थ सपादन के आदर्श को निभाने में आश्रम व्यवस्था को वर्णानुरूप बताया गया है। सभी आश्रम-धर्म सबके लिए होकर भी संस्कारो और धार्मिक कृत्यो मे वैविध्य माना गया है। इसी बात में इसका सामाजिक आदर्श भी निर्भर है। वर्णानुरूप सस्कार ही भारतीय सामाजिक दर्शन का केंद्रबिंदु है। वर्णाश्रम धर्म तो एक ओर से आदमी को आदर्शमय सामाजिक बन बनाता है तो दूसरी ओर उसे अपने मोक्ष-मार्ग मे उत्तरोत्तर अग्रसर होने में सहायक बनता है। हर एक सभी सस्कारों और आश्रम धर्मों के पालन मे समान रूप से योग्य नहीं होता। जो उसके लिए अनुरूप गुणो को रखता है और वैसे ही श्रम कर सकता है, वही उसको पूरी तरह निभा सकता है। ऐसी योग्यता कोई व्यक्ति इसी जन्म मे प्राप्त किये हुए रहता है तो कोई बाद के जन्म में प्राप्त करता है, जब उसके लिए

त्याग का अवतार

तू

राम की प्यारी है।
नारियों में न्यारी है।

तैयार थी पति के साथ वन जाने को।
तैयार थी पति के लिए दुख भोगने को।

अपने पति के साथ खुशी से वन में रही।
सोचा तू ने सदा पुनीत जीवन यही।

पति के वियोग से रोज रोयी।
पल भर भी तू नही सोयी।

क्या है तेरा पाप पति से अलग रहने को?
क्या है तेरा दुर्भाग्य इस तरह तडपने को?

हनुमान की बात से खुशी आयी तुझे।
हनुमान की मदद से राम ने प्राप्त किया तुझे।

रावण को मारकर तुझसे मिलने आया राम।
राक्षसों को मारकर पूरा किया अपना काम।

अग्निप्रवेश किया तू ने राम की आज्ञा से।
अपने पति को प्रसन्न किया तू ने इससे।

बन गयी रानी अयोध्या लौटकर।
खुश हुई प्रजा अधिक इसपर।

धोबी की बात से भेजी गयी वन को।
क्यों न समझाया यह ठीक नहीं उसको?

कठोर दड दे दिया राम ने तुझे।
कष्ट झेलना पडा फिर भी तुझे।

किया पालन-पोषण लव-कुश का वन में ही।
बिताया जीवन अपने पति की याद में ही।

औरत पर अविश्वास प्रकट किया राम ने।
और एक बार अग्निप्रवेश चाहा उसने।

अप्रसन्न हुई उसकी बात से तू अधिक।
अपने जीवन को समझा तू ने नरक।

जब राम तैयार था उसके बाद ही तुझे लेने को,
तू तैयार न थी उसके बाद भी जीने को।

आ गई धरती माता की गोद से।
चली गई उसी माता की गोद में।

रानी बनकर भी कहाँ है सुख?
दुख को ही समझ लिया सुख।

दे दिया पति की सेवा को ही पहला स्थान।
मिल गया स्त्रियों में तुझे पहला स्थान।

कौन भोग सकता तेरी तरह बहुत कष्ट?
कौन तैयार रहता प्राप्त करने को इतना नष्ट?

तू होती है सभी सुखों का आधार।
क्यों बन गई इतने दुखों में निराधार?

कैसा दुखमय जीवन है पूरा!
कैसा त्यागमय जीवन है तेरा!

कहते हैं तू लक्ष्मी का अवतार।
मानते हैं तू त्याग का अवतार।

श्री के. एस. शंकरनारायण,
कल्पाक्कम्.

आवश्यक धर्म का सचय और कर्म का आचरण कर लिया होता है ।

यह सब विधान दार्शनिक आधार व आदर्श पर निर्मित है और उसे शाश्वत भी बताया गया है । इसके मुख्य आधार द्विज और शूद्र है । फिर सभी द्विजो का एक रूप धर्म-विधान नहीं है । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के धर्म और सस्कार अपने में कुछ अतर रखते है । इसी तरह सामाजिक व आध्यात्मिक अधिकार व सुविधाएं भी धर्म एव कर्म के अनुरूप विभिन्न बताये गये है । शूद्र इन (द्विज-धर्मो) से दूर है ।

समान अधिकार व सुविधा प्राप्त समूह अथवा वर्ग ही वर्ण कहलाता है । हर एक वर्ण हर एक आश्रम की तरह, अपना कुछ विशिष्ट धर्म और वैसे ही कुछ सामाजिक कर्तव्य रूपी आदर्श रखता है । इन्हीं के द्वारा समाज का सगठन और वैयक्तिक व सामाजिक कर्तव्यो का व्यवस्थानुकूल निर्वहण होता है । तप, यज्ञ, आर्जव, क्षांति, दांति, ज्ञान, भूतहित जैसे धर्म क्षत्रियों के होते है तो गोपालन, कृषि, वाणिज्य जैसे धर्म वैश्य के होते है । सेवा धर्म शूद्र का होता है । ये सभी धर्म उन उन वर्णवालो के सहज धर्म माने जाते है और इन्हीं के पालन मात्र से सब सहज अभ्युन्नति प्राप्त कर सकते है । अभ्युदय-निश्रेयसकारी धर्म वही है जो वर्णानुरूप सहज धर्म है, जिसे स्वधर्म भी कहते है । स्वधर्म का त्याग और परधर्म का वरण श्रेयस्कर नहीं होता ।

आश्रमानुगत चारो सामाजिक व आध्यात्मिक कर्तव्य, जो चारो वर्णों के विधान में परिणत हुए है, वे उन वर्णवालो की सहज रुचि अथवा उनके नैज गुणो के आधार पर बनाये गये है । 'चातुर्वर्ण्य मया सृष्टि गुण-कर्म विभागश ।' (गीता १४-३) । ये सत्व, रज और तम नाम के तीन गुण ह, जिनमें से किसी एक का बाकी दोनो में अल्प मात्रा में संक्रमण होता है तो किसी एक का किसी में प्राचुर्य भी होता है । वैसे हो उनके ज्ञान और आचरण भी इन्हीं गुणो के अनुरूप होता है । अपने अपने वर्ण के अनुरूप गुण-कर्मो के आचरण से मोक्ष का अधिकार प्राप्त होता है । जन्मांतर सस्कार से गुणो का विकास और व्यक्तीकरण होता है तो वैसे हो कर्म भी उससे नियत होता है । गुण के अनुरूप श्रम और श्रम अथवा वर्णाश्रम सस्कार रूप कर्म के द्वारा गुणो का भी परिष्कार होता है, जो अगले जन्म में परिपक्व एवं फलप्रद होते है । मानव जन्म कर्म का फल है । और वही गुण-परिष्कार का अवसर भी देता है । परिष्कृत गुण-कर्म अथवा श्रम से व्यक्ति मोक्षगामी होता है ।

वर्ण तो कोई सामाजिक सकेत मात्र नही है, वह तो समान गुण कर्म शील, मनोवैज्ञानिक तत्व से एक-सा निर्मित मानव समुदाय का व्यवस्थागत नाम सकेत है । वर्णव्यवस्था से उन्ही चारो समुदायो का विभाग माना जाता है, जो गुण और कर्म के तरतम भेद से उत्तरोत्तर उन्नत बताया जाता है । पुरुषसूक्त (ऋक्१०-९-१२) में जो मुख, बाहु, ऊरु, पादो से वर्णो की उत्पत्ति बतायी गयी है, उसका तात्पर्य उन उन अग-विशेषों का सामूहिक शरीर-हित के काम से है । वैसे ही उन उन वर्णों का समाजहित का कर्तव्य भी इसी से स्पष्ट व्यंजित होता है । अगी के हित ही कोई अंग होता है और अगी की दृष्टि से सभी अग समान महत्वपूर्ण होते है । यह रूपक ही नहीं, वरन् अतीव रहस्यात्मक तत्व भी है ।

सामाजिक दृष्टि से वर्ण व्यवस्था श्रम-विभाग का ही चारित्रिक, निर्वाहक, आदर्शमय, प्रतीकात्मक एव रहस्यात्मक व्यवस्था है । महाभारत (शाति १८८, १-१७) के अनुसार पहले वर्ण-विभाग नहीं था, बाद में कर्म के अनुसार वर्ण कायम हुए है । लेकिन सदा से गुण, कर्म और धर्म के आधार पर वर्ण को मानने की बात पर जोर दिया जाता आ रहा है । (महाभारत वनपर्व १८०, ३३-३९, शतपथ ब्रा ११, ५-४, मनु १०-६५) ।

कर्म-सिद्धात का भी वर्ण-विभाग में बडा हाथ है । कर्म, जन्म और मोक्ष परस्पर सबद्ध है । कर्म-फल का भोग जन्म में और कर्म-फल-त्याग मोक्ष में परिणत होते है । पिछले जन्म के सस्कार अथवा कर्म इस जन्म के गुण-श्रम का रूप धरते है । नियत सत्कर्म का फल सद्गुण और सत्कर्म में व्यक्त होकर मुक्ति-मार्ग को प्रशस्त करता है । जन्म को भी नियत कर्म ही निश्चित रूप देता है ।

मोक्ष-प्राप्ति जब तक न हो तब तक जन्म-मरण का चक्र चलता रहता है । अतः मोक्ष केलिए आदमी को नियत कर्म, विध्युक्त धर्म का निर्वहण करना पडता है । कर्म के फल के प्रति आशा न रखनी चाहिए, क्योकि फलासक्ति बंधन का हेतु होती है । कर्म-फल का त्याग अथवा

(शेष पृष्ठ ३२ पर)

प्रभु श्रीराम और सखा विभीषणजी

इसके पश्चात श्री विभीषणजी कहते है कि ममता एक ऐसी चीज है कि जिस प्रकार कोई अबकारमय रात्री हो।

वह राग द्वेषरूपी उलूक को सुख देनेवाली है। उसका नाश करने के लिये प्रभु श्री रामचन्द्रजी के उज्वल प्रताप रूपी सूर्य का हृदय में जब तक प्रकाश नही हुआ है तब तक वहाँ अंधेर रूपी रात्री ही होती है।

इसके पश्चात श्री विभीषणजी कहते है कि अब मेरे हृदय में श्री प्रभु के उज्वल सूर्य का प्रकाश हुआ है। इससे मै कुशल हूँ और सर्व भय जो ऋषि मुनियो के मन को भी विकार करने वाले थे, हे रामचन्द्रजी आपके पावन कारी स्मरण कमल के स्पर्श एवं दर्शन होने से दूर हो गये है।

श्री विभीषण जी कहते है कि अब मेरे हृदय में श्री प्रभु के उज्वल सूर्य का प्रकाश हुआ है। इससे मै कुशल हूँ।

हे प्रभु आप जिस पर कृपा करते है एवं जिस पर आप अनुकुल होते है उसके तीनो ताप आधि-व्याधि और उपाधि उसे व्यापति नही है। आशय यह है कि उसे आध्यात्मिक आदिदैविक एव आधि भौतिक ये तीनो नाम उसे नहीं व्यापते है अर्थात इन तीनो से उसका जीवन निर्लिप्त रहता है।

आप देख रहे है कि मै निसीचर होकर अति उधम करने वालो के स्वभाव का हूं। मुझमें कोई भी अच्छे आचरण नहीं है। फिर भी श्री प्रभु ने कृपा करके मुझे गले लगाया है, और मेरे हृदय के तिमिर का नाश कर दिया है। उन्होंने स्वयं के स्वरूप का मुझे दर्शन दिया है जो कि मुनिजनो के ध्यान में भी आना दूर्लभ है। उस परम स्वरूप का प्रभु ने मुझे आलिंगन द्वारा दर्शन कराया है।

मेरा अहोभाग्य है कि श्री रामचन्द्रजी की कृपा सुख का मै पुजारी बना हूँ। प्रभुने मुझे स्वयं की कृपा का प्रसाद देकर मुझे अद्वितीय सुख से लाभान्वित किया है।

श्री विभीषण जी कहते है कि मै उन गुरुपद कमल के दर्शन करता हूँ कि जिनकी सेवा श्री ब्रह्माजी श्री शिवजी जैसे महान देव कर रहे है। उन युगल पद कमल की सेवा श्री प्रभु ने मुझे देकर मेरे नेत्रों को पावन किया है।

श्री विभीषण जी की इस भाव भक्ति पूर्ण वाणी को सुनकर श्री प्रभु अपने स्वभाव का ध्यान करके कहाते है कि :—

सुनहु सखा निज कहहुं जान भुसुंडी समझा
संभु गिरी जाऊ
जो नर हाई चराचर होही आवे समय सरन
तकि मोही

हे सखा मेरे स्वभाव को श्री काग भुडसु जी एवं शिव पार्वती जानते है जो कोई मेरी शरण समय से आते है उनके भय को मै दूर करता हूँ। और उसे मेरी शरण में रखता हूँ। चाहे वह चराचर जीवों का एही क्यों न हों।

श्री स्वामीजी यहाँ प्रभु के उन भावों को कहना चाहते है कि यहां प्रभु श्री ने बहुत ही

श्री शकरलाल छगनलाल परीख,
मु. कवॉट, (गुजरात)

कर्मवाणी कही है। भावार्थ यह कि विभीषण तो क्या किन्तु यदि चराचर का बैरी राक्षसराज रावण भी आकर मेरी शरण में आ जाय और रक्षण मागे तो मै उसे भी 'अभय' करके अपनी शरण मे रखूंगा । यह मेरा धर्म और सत्य वचन है ।

मेरी शरण में आने वाले सभी जीवो को मैं अभय दान देकर उनका अवश्यभावी रक्षण करूंगा । भले ही वह मद मोह मत्सर कपट छल आदि दोषो से युत क्यो नहो। मेरे समक्ष मेरी शरण में आकर वे सारे दोष उसमें नहीं रहेगें।

श्री स्वामीजी ने यहां "तजि मद मोह कपट छल नाना" जो शब्द कहे हैं उसका स्वरूप भाव यह है कि वह जीव अपने अन्दर रहे सभी दोषो का त्याग करते हुए मेरी कृपा से एक महान पवित्र जीवन व्यापन करता है ।

इसके पश्चात प्रभु श्रीरामचन्द्रजी एक विशेष बात इस प्रकार से कहते है कि जीव की ममता रूपी माया नव स्थान में होती है ।

१. जननी २ जनक ३ बधु ४ सुत ५ दारा ६ तनु ७ धनु ८. भवन ९ सुहृद् परिवार ।

जीव जब इन नौ स्थानो से अपना ममत्व दूर करता है और पवित्र भाव से धर्म विधि पूर्वक उनके साथ वर्तन करता है, तो मैं कहता हूँ कि उनमें मेरे चरण कमल की निर्मल भक्ति उत्पन्न होती है ।

'स्वामीजी ने जिसे सबके ममता ताग बटोरी' मय पद मर्नाह बाध बरि डोरी" वाला स्वरूप वाचक वाक्य कहा है ।

स्वामीजी कहते है कि इस वाक्य में श्री प्रभु का उपरोक्त भाव यह है कि मानव अथवा जीव या तो अपनी समझ से सर्व स्थान से अपनी ममता की डोरी समेट ले अथवा उनमे स्वयं का धर्मनीति मय पवित्र वर्तन रखे । इन दोनो मे से जो भी अनुकुल हो उसके अनुसार स्वय के जीवन को रखे तो उसे इस अलभ्य स्थिति की प्राप्ति होगी या होती है ।

जिसे समदरसी भगवान कहते है यह मेरे सखा विभीषण में वह समदरसी स्थिति जो कि मेरे स्वय में है उसकी प्राप्ती हो गई है जो कि सभी प्रकार के हर्ष शोक भय रहित की स्थिति प्राप्त हुई है । श्री प्रभु कहते है कि जहां तक मानव मन मे अपरसशय है वहा तक वह इस समदरसी स्थिति को प्राप्त नहीं कर सकता है ।

सर्व सभासदों के सुनते हुए श्री प्रभु उपरोक्त चर्चा वहां पर करते हैं और कहते है कि—

अस सज्जन मम उर बस कैसे ।
लोभी हृदय बसई धनु जैसा ।
तुम्ह सरीखे सत प्रिय मोरे ।
धरेहू देह नही आन निहोरे ।।

प्रभु ने कहा कि ऐसे सज्जन अर्थात विभीषण जैसे सत मेरे हृदय मे इस प्रकार से प्रिय होकर वास करते हैं जिस प्रकार कि लोभी के मन में धन वास करता है ।

हे सखा विभीषण आप ने तो अपने देह की भी परवाह नही की, आपने अपनी देह केवल मेरे उपयोग के लिये धारण कर रखी है । श्री प्रभु कहते है कि जिन्होंने देह धारण करके मेरे सिवाय दूसरा कोई भी नहीं माना है और इसी भावना से देह का सदुपयोग किया है, ऐसे संत को मैंने अपने प्राण से भी अधिक मान्यता दी है । ❊

(पृष्ठ ३० का शेष)

निष्काम कर्म ही मोक्ष का साधन है । तभी कर्म रूपी बीज का नाश होता है । कर्म को ही दैव (अदृष्ट) भी कहते हैं, क्योंकि वही इस जन्म में गुण-श्रम का निर्धारक है । कर्मातीत होकर ही कोई गुणातीत (मुक्त) होता है ।

वर्ण तो जाति, कुल, वर्ग, सघ या समुदाय नहीं है । इसका मूल आदर्शमय सामाजिक एव आध्यात्मिक अभ्युन्नति की साधना में निहित है। वर्ण का अर्थ रंग भी है, गुणो के भी वैसे ही रंग कल्पित हैं, जो उनके तत्व को सूचित करते हैं । वर्णों का भी रंगो से जो संबध बताया गया है, वह भी उनके गुण-धर्म को सूचित करता है ।

वर्ण केलिए पहले जाति शब्द का प्रयोग विरले ही होता था । लेकिन उसी का बहुल प्रयोग जो बाद में होने लगा, वह जन्म के आधार पर जोर देता चला । कुल का निर्माण परिश्रम के आधार (वृत्ति, पेशे, धधे आदि) पर हुआ है । फिर हर एक कुल के अपने विशिष्ट धर्म, संप्रदाय और आचार भी बने है । अंतर्विवाह, सहपक्ति-भोजन जैसे मामले भी सप्रदायगत होते चले । कुल-पचायत या जाति-पचायत उनको एक हद तक राजनीतिक सत्ता भी देती हैं । जो हो, जाति, कुल, वर्ग आदि सभी को अपने अपने धर्म का पालन करना और उसीका अनुगमन करना लाजिमी होता है और अंत में इन सभी को मख्य रूप से उन्हीं चारो प्रधान वर्णो के अंतर्गत होना विधायक सा होता है ।

वर्ण-विभाग आर्थिक स्तर पर भी व्यक्ति और समाज का सहायक सिद्ध होता है । परस्पर स्पर्धा के बिना अपने अपने स्वकुल धर्म के अनुसार हर कोई कुल-वृत्ति या पेशे को अपना कर स्वीय अभ्युदय कर सकता है । धर्म-कर्मानुरूप गुण श्रम विभाग से वर्णो को उत्तरोत्तर उन्नत स्थिति पर पहुचते जाने की सहूलियत भी स्वय सिद्ध मिलती है । आश्रम-धर्म भी स्वीयोन्नति में सहायक है ।

धर्म तो शासको का शासक है । वही न्यायपूर्ण, निष्पक्षपात, दयामय धर्म है, जो अर्थ, नीति, काल-प्रमाण और परिषद् से संबद्ध रहता है । राजा को दैवांशसंभूत बताया गया है, क्योकि वह धर्म की रक्षा करता है । अतः सिद्ध है कि धर्म राजा से भी अधिक है । धर्म ही राजा और प्रजा दोनो को नीति-बद्ध करता है । राजा क्रूर हो तो उसे पदच्युत करने का अधिकार प्रजा को होता है । (मनु ७, ३-१३, महा भारत, शाति ९६-३५) । अतः राजा को धर्म, अर्थ और काम की रक्षा में तत्पर रहना चाहिए। दड-विधान इनकी रक्षा केलिए ही बना है । धर्म-विरुद्ध दड से राजा का नाश होता है । वह धर्म-रक्षक है । श्रुति, स्मृति व्यवहार (आचार सप्रदाय) और राजनीति सब धर्म-निर्णय के आधार होते हैं । वर्णाश्रम धर्म का पालन देश-काल के अनुरूप भी हो सकता है । प्रजा को राजा की सतान बताया गया है । प्रजा राजा के प्रति भक्ति, श्रद्धा विश्वास दिखावे और राजा प्रजा के प्रीति-विश्वास का पात्र बने रहे । तभी राजा, राष्ट्र और प्रजा नियत धर्मानुसरण करके इह-पर साधना में निरातक आगे बढ सकते हैं । ✡

---

1. धृति क्षमा दयोऽस्तेय शौचमिंद्रिय निग्रह ।
   धीर्विद्या सन्यमक्रोध दशक धर्मलक्षणम् ।। (मनु 6–92)
2. धर्म एव हतो हंति, धर्मो रक्षति रक्षित ।। मनु (8–15)

(पृष्ठ ७ का शेष)

यत्नवन्तो यवद्वीपं सप्तराज्योपशोभितम् ।
सुवर्ण रूप्यक द्वीपं सुवर्ण कर मण्डितम् ।
(कि ४०–३०)

पश्चिम जावा में चौथी शती में पल्लवलिपि में टांका हुआ एक शिलालेख है। उस से तारुमा वंश के राजाओं और तत्कालीन राजा पूर्णवर्मा के राजकाजो का परिचय प्राप्त होता है। ७६० ई. में निर्मित दिनय शिला लेख में टाँका गया है कि वहाँ प्रतिष्ठापित ज्योतिर्लिंग दक्षिण भारत के कुजर कुंज से लाया गया था। वहीं स्थित विश्वविख्यात बोरोबुदूर अर्थात् बडे बुद्ध का मन्दिर शैलेन्द्रराजाओं से निर्मित था। अपनी अभिधा के ही सदृश विश्वभर में बुद्ध का सबसे बडा मन्दिर वही है। उस में चारों ओर भगवान बुद्ध का संपूर्ण जीवन प्रस्तर-चित्रों से अंकित हैं। एक पहाडी पर निर्मित इस भव्य मन्दिर में अनेकों सोपान हैं। मुसलमानों के आक्रमण से डरकर बौद्ध भिक्षुओं ने इसे मिट्टी से ढक लिया था। अंग्रेजों के शासनकाल में सर थामस रैफल्ड ने इसका पता लगाया और इसे सावधानी से मिट्टी से अनावृत किया। शैलेन्द्र राजाओं से निर्मित इमारतों में बोरोबुदूर ही पूर्ण रूप से बचा हुआ है। आश्चर्य की बात है कि वह नवनिर्माण सा प्रतीत होता है। १९२७ में कवीन्द्र रवीन्द्र ने उसे देखने के उपरान्त पास ही एक वृक्षारोपण किया था।

प्रसिद्ध इतिहासकार श्री आर सी मजुमदार का अभिप्राय है कि शैलेन्द्र राजाओं के पुरखे उडीसा से आनेवाले थे। प्राय: ये पाण्ड्य राजाओ से सम्बन्धित थे क्यों कि पाण्ड्य राजाओं के ही जैसे इनका मीनलाछन था ओर शैलेन्द्र राजाओं से हमेशा चोलराजा लडते थे।

वायुपुराण के अनुसार जावा, बोर्नियो मलय आदि द्वीप भारत के अंग थे

अंगद्वीपं यवद्वीपं मलयद्वीप मेवच ।
शखद्वीप कुशद्वीप वाराहद्वीपमेवच
एव षडैते कथिता अनुद्वीपा सामन्नत:
भारत द्वीपदेशावै दक्षिणे बहुविस्तरा: ॥

शैलेन्द्रों से निर्मित बृहत् बोडोबुदूर के सदृश त्रिमूर्तियों के बडे मन्दिरों के अवशेष चण्डीसेवु में पाये जाते हैं। उन में रामायण और कृष्णावतार के असख्य दृश्य उत्कीर्ण है। चण्ड श्री कण्डी के प्राचीन विष्णु-मन्दिरों में भी गुप्त पल्लव एवं चालुक्य शिल्प उपलब्ध हैं। भूकम्प या अन्य किसी प्राकृतिक उत्पात से दसवी शती के आदिभाग में वे प्रदेश खण्डहर बन गये। उसी समय मध्य अमेरिका की मय-सस्कृति का भी अत हो गया था।

ग्यारहवी शती में जावा के राजा आर्लिग (आर्यलिंग) के राज्य काल (१०१०-१०४२) ई. में कविभाषा में भारतीय पुराण, रामायण महाभारत आदि रचे गये। अर्जुन विवाह आदि के छाया नाटक अत्यधिक लोकप्रिय हुए। जावा के बलिहान में गरुड पर आरूढ आर्लिग की प्रतिमा है। ऐसा विष्णु का ही अवतार मानते होंगे। ग्यारहवी शती से चौदहवी शती तक मजापहित (मयापह्न) नामक हिन्दू राज्य का केन्द्र जावा था। उसके अधीन में फिलिप्पैन तक के सभी द्वीप समाविष्ट थे।

पूर्वी जावा के पंतारण में चौदहवीं शती में निर्मित वैष्णव एवं शैव मन्दिरों के खण्डहर सर्वत्र दिखायी देते है। जब वे प्रदेश पन्द्रहवी शती मे मुसलमान आक्रामको के अधीनस्थ होते गये तब वहाँ की जनता भी मुसलमान धर्म ग्रहण करती गयी। वहाँ के हिन्दू राजा हिन्दू सस्कृति की रक्षा के लिये राजपरिवार, पुरोहितों विद्वानों और कलाविदों को साथ लेकर वलि द्वीप में जा बसे। जोग्यकर्ता और सुरकर्ता के राजा मुसलमान बन जाने पर भी प्राचीन कलाओं, नृत्य,

तिरुमल मन्दिर पर गोकुलाष्टमी के अवसर पर श्री कृष्ण स्वामी

सगीत तथा रामायण और महाभारत से सम्बन्धित नाटको के प्रदर्शन आदि के लिये आज तक प्रोत्साहन दे रहे है ।

३८३ ईस्वी में सुमात्रा (सुवर्णद्वीप) की रानी और उसके राज कुमार काश्मीर के राजकुमार गुणवर्मन और बौद्ध भिक्षु कुमार जीव से बौद्ध धर्म में दीक्षित थे । उसके बाद गुणवर्मन और कुमार जीव से चीन के क्योंटन के लेपचित्र निर्मित हुए थे । चीनी यात्री फाहियान मध्य एशिया, पजाब और मगध राज्य से होते हुए वग राज्य मे छः वर्षो तक अध्ययन करके श्रीलंका गया । वहाँ से सुमात्रा द्वारा चीन लौटा । यह यात्रा ३९९ ईस्वी से ४१३ ईस्वी तक चौदह वर्षों में पूरी हुई थी । श्री विजय साम्राज्य ने सुमात्रा में पलबग नाम नदी के पास के दुर्गो में जन्म लिया था । वह वैदिक. पौराणिक और बौद्धधर्मो से सम्बन्धित ज्ञान एवं सस्कृत भाषा के प्रसार कार्य में अग्रगण्य था । आठवी शती में उसके विश्वविद्यालयों में चीन के एक हजार विद्यार्थी सस्कृत एव धार्मिक ग्रथों के अध्ययन में लगे हुए थे । अरबी और चीनी लेखों के अनुसार सन् ७१७ ईस्वी मे सुमात्रा जलसधि के द्वारा पर्शिया के पैतीस जहाज पर्शिया से चीन तक आते जाते थे । सन ८६० ईस्वी में श्री विजय के साम्राट ने नलन्दा और गंगा नदी के किनारे सुमात्रा के यात्रिकों की सुविधा के लिये बहुत सी सरायों की स्थापना की थी । ग्यारहवी शती में प्रसिद्ध भारतीय भिक्षु अतीश दीपाकुर श्री ज्ञान ने सुमात्रा में दस वर्षों तक रहकर बौद्ध दर्शन के सर्वास्तिवाद का अध्ययन किया था । वह बाद को विक्रम शिला विश्वविद्यालय में उसी विषय का प्राध्यापक था ।

सुमात्रा के शैलेन्द्रराजा तमिल भाषा-भाषी भारतीयों से मिलकर भारतीय चोलों के वश

में स्थित श्रीलंका से लडते थे। सुमात्रा की राजधानी श्री विजय थी। उसी के नाम से अभिहित श्रीविजय साम्राज्य सुमात्रा से फिलिप्पैन तक आठवी शती से छः सौ वर्षों तक प्रसिद्ध था। चौदहवीं शती में वह जावा के मजापहित साम्राज्य में विलीन हो गया।

बलि द्वीप ही एक हिन्दू राज्य है जो प्राचीन बृहद्भारत के उपरोक्त सभी प्रदेशों की भारतीय संस्कृति कलाओं, धार्मिक रूढियों तथा उस के परंपरागत साहित्यों को आज तक परकीय आक्रमणों से बचा रहा है। वहाँ के निवासियों के हरेक काम में अध्यात्म एवं कला के दर्शन होते है। सिहराजनगर बलिद्वीप का शासन केन्द्र है। हिन्दू संस्कृति की रक्षा केलिये ही उसकी प्रजा के और राजा के पूर्वज बलि द्वीप मे आ बसे थे। उन्नीसवी शती में बलि द्वीप पर डचों का आक्रमण हुआ। १८४९ ईस्वी में बलि द्वीप को हिन्दू राजा पूरी शक्ति लगाकर वीरावेश से ड़चों के साथ लडा। तोपों और बन्दूकों से सज्जित डचों को विजयी होते देखकर राजा ने अपने परिवार सरदारों तथा पुरोहितों के साथ अग्नि प्रवेश किया। डचों के हाथ में बलिद्वीप तो आगया किन्तु वे बलि द्वीप की हिन्दू प्रजा को धर्मान्तरित नहीं कर सके। वहाँ की हिन्दू जनता ने डचों को अपने धार्मिक आचार व्यवहारों में हाथ डालने से रोके रखा। वे अब तक अपने वर्णाश्रम धर्मों का पालन करते हैं। पहले ही जैसे सगुणाराधन, सगीत, चित्रकला नृत्य, मूर्तिशिल्प, षोडश संस्कार आदि में वे रुचि लेते है। प्रत्येक घर में इष्टदेव की मूर्ति की पूजा के समय गृहिणियाँ नैवेद्य समर्पण करते हैं। सारे द्वीप में ब्रह्मा, विष्णु, शिवजी, उमा, सूर्य, इन्द्र, यम, गणपति तथा ब्रह्मदेव की पूजा प्रचलित है। प्रत्येक ग्राम में अश्वत्थ वृक्ष एवं नागसर्प की पूजा, प्रचलित है। खेतों और धासगारों में श्रीदेवी की पूजा की जाती है। पर्वतों नदियों तथा ग्रामाधिदेवताओं की भी पूजा होती है। पर्वों और उत्सवों के समय मन्दिर तोरणों से अलंकृत किये जाते हैं। वहाँ दानों से मूर्तियों की रचना करके फल, पुष्प, सगीत, नृत्य मालपुआ आदि का नैवेद्य समर्पण इत्यादि से पूजा की जाती है। पूजा के बाद गॉव के सब लोग प्रसाद स्वीकार करते है। ब्राह्मण लोग व्रतोपवास तथा विद्याध्ययन करते हैं। शिल्प, चित्रकला सगीत और साहित्य पुरुषों की और नृत्य तथा बुनाई स्त्रियों की प्रिय विद्याएँ हैं। सोने - चान्दी की वस्तुएँ बनाना, काट और धातुओं में नक्काशी का काम करना वंशपरंपरागत विद्याएं हैं।

मन्दिर, पचायतघर, और बाजार के चौक सार्वजनिक जगहे मानी जाती हैं। बलि द्वीप के लोग शवसंस्कार को अति महत्वपूर्ण मानते हैं। वे इस पर बहुत सावधान रहते है कि कहीं आधुनिक शिक्षा और विज्ञान अपनी परंपरागत विद्याओं को च्युति नही पहुँचाएँ। हरेक व्यक्ति तावीज के रूप में किस नामक एक छोटी तलवार रखता है जो आत्मरक्षा के लिए बहुत सहायक होती है। उन लोगों का विश्वास है विष्णु ने असुरमर्दन के लिये उसका प्रयोग करके लोगों को मार्गदर्शन कराया।

१९५० ईस्वी मे इण्डोनेशिया स्वतन्त्र राष्ट्र घोषित किया गया। उसके राष्ट्रध्वज में सोने के गरुडलाछन के नीचे यह नारा "भिन्ने का तुंगल इका" अर्थात् भिन्नता में एकता वैष्णव भक्ति पर आधारित भारतीय संस्कृति का ही सकेत है भूमध्यरेखा की दोनो ओर फैले हुए इन्डोनेशिया के तीन हजार छोटे और बडे द्वीपों में जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, मलाया एवं बलि बडे है। वहाँ की लिपियाँ ब्राह्मणी की ही विकृत लिपियाँ है। आजकल इन्डोनेशिया के अधिकांश लोग मुसलमान हैं किन्तु उनकी पूजाप्रणालियों आचार विचार आदि पर वैष्णव भक्ति के प्रभाव अपरिवर्तित हैं। चूंकि खेती उनका प्रधान धन्धा है, वे अपने खेतों में धन - धान्यों की आदिदेवता श्रीदेवी की पूजा करते हैं। मनोरंजन के लिये गाँवों के लोग पुराणों, रामायण और महाभारत की कथाओं से सम्बन्धित नृत्य और नाटकों में भाग लेते हैं। उनके साहित्य संगीत कलाकृतियों एव वस्त्रों पर भी भारतीय संस्कृति के प्रभावअटूट हैं।

ईसा से पहले सहस्त्रों वर्षो से मध्य एशिया के राजवश भारतीय राजवशो से सम्बन्धित थे। ईसा की सातवी शती तक तुर्की आक्रमणों के पहले खोतान के राजा हिन्दू ही थे। वहाँ के ओयसिसो मे प्राकृत भाषाओं के साथ ब्राह्मी एवं खरोष्टी लिपियाँ प्रयुक्त थीं, सर्वत्र वैष्णव भक्ति का कुबेर सप्रदाय प्रचलित था। यह बात कनिष्क एव काड्फिसस के सिक्कों भी सुस्पष्ट हैं। बिनगाम प्रदेश के कलव की गुफाओं में ब्रह्म, इन्द्र, शिव, पार्वती तथा नन्दी के लेपचित्र यद्यपि देखे जा सकते है। आठवी शती इनका से नाम चीनी तुर्किस्थान पडा।

सन् ३५७ से ईस्वी तक भारत से दस राजदूत चीन में भेजे गये थे। चीन में बौद्ध धर्म के प्रसार में काश्मीर के राजपुत्र गुणवर्मा, कुमार जीव आदि के मुख्य पात्र थे। उन से बनाये गये लेपचित्र चीन में आज तक प्रसिद्ध हैं। चीन के पगोडा कनिष्क से पेशावर में निर्मित बौद्धस्तूप के ही प्रतिरूप हैं। चीन, जापान आदि में जनप्रिय जेन या ध्यान मार्ग भिक्षु बोधि धर्म से छटी शती में वहाँ प्रचारित योगमार्ग पर आधारित है। ईसा की पहली शती से दसवी शती तक सैकडों भारतीय साधुसन्त चीन में जा बसे। उनसे सस्कृत से चीनी में हजारों ग्रन्थ अनूदित हुए। बहुत से ऐसे ग्रथों के मूल सस्कृत में आजकल अप्राप्य हैं किन्तु उनकी अनूदित पुस्तके चीन के ग्रंथागारों में उपलब्ध हैं। चीन और जापान में प्रचलित धार्मिक भावनाओं तथा राज भक्ति पर वैष्णव भक्ति की अत्यधिक छाप पडी है। *

(पृष्ठ ६ का शेष)

पतित हूँ तथापि आपकी कृपा का पात्र हूँ क्यो कि आप पतित पावन हैं और मैं आपका बालक हूँ। आपका बालक होने के नाते मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप मेरा उद्धार करेंगे।

"माधो जू जो जन मो बिगरै
सुनि कृपाल करुणामय कबहुँ प्रभु नहि
चित धरै"

भगवान इतने कृपालु है कि वे अपने दास के अपराध सुनकर उसकी ओर ध्यान नहीं देते। जैसे शिशु माता की गोद में सैंकडो अपराध करता है, परन्तु वह अपने पुत्र का लालन पालन कर चित्त मे प्रसन्न ही होती है। जैसे जब दाँतो से जीभ कट जाती है तो वह दातो पर क्रोध नहीं करती, उन्हे क्षमाकर देती है। इस अपराध के बदले मुख को दूध और मधु का मधुर पेय मिलता है। जैसे मनुष्य अपने लाभ के लिए वृक्षो को काटता और जलाता है तथापि वे घातक को अपनी सुखद और सुशीतल छाया देकर उनके ताप को निवारण करते हैं। जैसे किसान हल से पृथ्वी के वक्ष.स्थल को विदीर्ण कर वैर का बीज बोता है, परन्तु वसुधा इस सब को सुख से सहन करती है और एक बीज के बदले सहस्रो बीज देती है।

३. 'महाप्रभु, तुम्हे बिरद की लाज।'

हे महाप्रभु! आपको अपनी बिरद की लज्जा है। आप कृपानिधान, दानी, दामोदर सबके कार्य संवारनेवाले है। जब गज के चरण को ग्राह ने पकड लिया तब उसने आपको पुकारा। उस समय आप इतनी आतुरता से भागे कि अपने वाहन गरुड को छोड दिया और मगर को अपने चक्र से मार डाला। दुर्वासा के क्रोध से राजा हरिश्चन्द्र को बचाने के लिए आप तुरन्त प्रकट हुए। जब हिरण्यकश्यप ने प्रह्लाद भक्त को बहुत सताया तो आपने नृसिह रूप धारण कर उसका नाश किया। जब दुस्सासन ने द्रौपदी के केश पकड कर उसे खींचकर नग्न करने का प्रयत्न किया तो द्रौपदी ने आपका स्मरण किया। आपने उसी क्षण प्रकट होकर उसके वस्त्रो को बढाया। जब अनेक राजाओ को परास्त कर मागध पति जरासध को गर्व हुआ तो आपने जरासध पर विजय प्राप्त कर उसे यमपुर भेज दिया तथा राजाओ को मुक्त कराया। सूरदास कहते हैं 'हे करुणामय मुरारी! आप की अगाध महिमा है। आप भक्तों के हितकारी हैं अत कृपाकर दर्शन दीजिए।

नामदेव के उपर्युक्त अभगो और सूरदास के पदो के वाचन से भगवान की अनन्त भक्तवत्सलता का बोध होता है। भक्त भगवान से अपने अनेक नाते जोडकर उनकी कृपा की याचना करता है। उसे पूर्ण विश्वास है कि भगवान मातृ-स्नेह से अपने बालक तुल्य भक्त के सब अपराध क्षमा कर देंगे।

"कुपुत्रो जायते क्वचिदपि कुमाता न भवति"*

बास्केटबाल क्रीडा - स्पर्धा

तिरुपति मे ता० २२–२–१९७९ से ता० २५–२–७९ तक ति ति देवस्थान के आध्वर्य में आल - इण्डिया वार्षिक बास्केट बाल क्रीडा-स्पर्धा मनायी जायगी । इस क्रीडा स्पर्धा में भाग लेनेवाली क्रीडा सस्थाएँ अन्य विषयो केलिए कृपया वेलफेर अफीसर, ति ति. देवस्थान, तिरुपति से संबंध स्थापित करे ।

ति ति दे. की तीसरी खुली हाकी क्रीडा - स्पर्धा

ति ति देवस्थान के आध्वर्य में २४–१२–७८ से २७–१२–७८ तक तीसरी खुली हाकी क्रीडा स्पर्धा सपन्न हुई ।

चन्द्रगिरि के सुब - कलेक्टर श्री ए पी.वी एन शर्मा ने इस क्रीडा स्पर्धा का प्रारंभ किया । उन्होने तिरुपति में इस प्रकार क्रीडा - स्पर्धाओ का प्रबन्ध कर क्रीडा - क्षेत्र के विकास मे अमूल्य सहयोग देने वाले ति. ति देवस्थान की प्रशसा की । क्रीडाकारो से उन्होने सलाह दी कि यह केवल एक क्रीडा है । इस मे प्राप्त होनेवाली जय और पराजय की ओर क्रीडाकारो को ध्यान नहीं देना चाहिए ।

इस के पहले ति ति. दे के कार्यनिर्वहणाधिकारी श्री पी वी आर. के. प्रसाद और श्री शर्मा महोदयो से क्रीडा कलाकारो का परिचय किया गया । अपने अध्यक्ष भाषण में श्री प्रसाद जी ने आश्वासन दिया कि क्रीडाक्षेत्र के विकास केलिए देवस्थान अपना संपूर्ण सहयोग देगा । उन्होने और भी कहा कि क्रीडा कलाकारो को क्रीडा की कुशलता को प्रदर्शित करने में अपना मन केन्द्रित करना है, न कि क्रीडा की जय और पराजय पर ।

एस वो आर्ट्स कालेज के प्रिन्सिपाल श्री ए सी सुब्बा रेड्डी ने सभा का स्वागत किया ।

वर्षा के कारण क्रीडा - स्पर्धा क्रमबद्धता से नही पूर्ण हो सकी । अतएव अत मे टासिग (Tossing) के द्वारा विजेताओ का निर्णय किया गया ।

वेदों का परिरक्षण

ति ति देवस्थान ने वैदिक वाङ्मय के परिरक्षण केलिए अपना भरसक प्रयत्न कर रहा है । देवस्थान के कार्यनिर्वहणाधिकारी श्री पी वी आर के प्रसाद ने बताया कि इस नये वर्ष केलिए आन्ध्र प्रदेश मे ५ लाख की लागत से ति ति देवस्थान की ओर से वेदपारायणम् स्कीम का प्रबन्ध किया जायगा । इस योजना के अन्दर आन्ध्र प्रदेश के विविध मन्दिरो केलिए घनापाठियो तथा क्रमपाठी पण्डितो की नियुक्ति हुई जिनको मन्दिरो में हरदिन तीन घटे वेदपारायण करना पडता है । ७० वर्षो से अधिक वयोवृद्धो को अपने घरो में ही रहकर वेदपारायण करने केलिए अनुमति दी गयी ।

श्री प्रसाद जी ने और भी कहा कि अब तक २२० पण्डितो की नियुक्ति हुई और घनिपाठी को रु. ३००/–, क्रमपाठी को रु २००/– तथा वृद्ध पण्डितो केलिए रु १००/– मासिक सभावन (वेतन) दिया गया । उन्होंने आन्ध्र प्रदेश में रहनेवाले पण्डितो से इस सदवकाश को सदुपयोग करने का विज्ञापन किया ।

श्री अन्नमाचार्य प्राजेक्ट

२५, जनवरी को तिरुपति स्थित श्री अन्नमाचार्य कलामन्दिर में एक सास्कृतिक कार्यक्रम मनाया गया । इस अवसर पर श्री अन्नमाचार्य के सकीर्तनो के प्रचार करने केलिए प्रबन्धित योजना को उद्देश्य कर एक विशेष कार्यक्रम का प्रबन्ध किया गया ।

इस अवसर पर श्री पी वी. आर. के. प्रसाद महोदय ने कहा कि भक्ताग्रेसर श्री ताल्लपाक अन्नमाचार्य का जन्मस्थल ताल्लपाक गांव के विकास केलिए योजना तैयार की गयी है। उन्होने श्री अन्नमाचार्य के कीर्तनो के प्रचार व प्रसार कार्यक्रम में देवस्थान के द्वारा किये गये प्रयत्नो का उल्लेख किया । उसके बाद उन्होने धार्मिक-तत्त्ववेत्ताओं से विज्ञापन किया कि इस विषय में अपनी अमूल्य सलाह देकर इस कार्यक्रम को सफल बनावे ।

कुमारी आर जी. शोभा राजु तथा श्री जी. बालकृष्ण प्रसाद की प्रार्थना से सभा प्रारंभ हुई। श्री अन्नमाचार्य प्राजेक्ट के स्पेशल अफीसर श्री के श्रीनिवासुलु शेट्टी ने सभा का स्वागत किया। उन्होने इस अवसर पर श्री अन्नमाचार्य प्राजेक्ट के उद्देश्य तथा कार्यकलापो का विवरण दिया । उन्होने और भी कहा कि देवस्थान के आस्थान विद्वानो को श्री अन्नमाचार्य के सकीर्तनो के स्वर-बद्ध करने का काम सौंपा गया ।

इस अवसर पर हिन्दू धर्म प्रतिष्ठानम् के कार्यदर्शी श्री डी. अर्कसोमयाजी महोदय ने इस अशाश्वत सांसारिक बधनो मे फँसे हुए लोगो केलिए पारमार्थिक चिन्तना की आवश्यता पर भावपूर्ण भाषण दिया ।

उस के बाद देवस्थान के पब्लिक रिलेशन्स अफीसर श्री आर. सूर्यनारायण मूर्ति ने कर्नाटक सगीत तथा तेलुगु साहित्य केलिए अन्नमाचार्य ने अपने सकीर्तनो के रूप में जो विभूति प्रदान की है उस का उल्लेख किया ।

कार्यक्रम के अत में सर्व श्री डी. पशुपति, एस. आर जानकीरामन्, आर जी. शोभाराजु जी बालकृष्ण प्रसाद, पी. राजगोपालन, के पार्वती तथा मैथिली के सगीत कार्यक्रम सपन्न हुए ।

वेद तथा वैदिक पण्डितों का सम्मान

विजयवाडा के एक देवता मन्दिर में आन्ध्र प्रदेश के वेदरक्षण मण्डली के आध्वर्य में ति ति. दे के वेदरक्षण स्कीम के अनुसार एक कार्यक्रम सपन्न हुआ । इस अवसर पर वेदविद्या में उत्तीर्ण छात्रो को योग्यता पत्र तथा हर एक छात्र को रु. ५,००० रकम भी दी गयी। साथ साथ आजीवन उनको रु ६५/– मासिक सम्मान भी दिया जायगा ।

सभा मंच पर पूज्य पाद श्री कांचिकामकोटि शकराचार्य की प्रतिमा को अलकृत किया गया ।

इस अवसर पर श्री पी वी आर के प्रसाद ने अपने अध्यक्ष भाषण मे कहा कि ति. ति देवस्थान मे यह वेदरक्षण योजना श्री एम. एस सुब्बुलक्ष्मी तथा देवस्थान की निधियो से चल रही है । बाद में उन्होने कहा कि विजयवाडा में लब्बीपेट स्थित श्री वेकटेश्वर मन्दिर में एक वेदपाठशाला का प्रारभ किया गया है ।

हाईकोर्ट के अवकाश प्राप्त जज श्री गोल्लपूडि वेकटराम शास्त्री ने वैदिक पण्डितो से विज्ञापन किया कि वे इस अवसर को सदुपयोग कर अपने पुत्रो को वैदिक साहित्य में सपूर्ण शिक्षणा दें ।

सर्वश्री डा० डी. अर्कसोमयाजी, श्री एम माणिक्यशास्त्री तथा के लक्ष्मणावधानी महोदयो ने भावभीने भाषण दिये ।

वेदरक्षण मण्डली के कार्यदर्शी श्री बी विश्वानंद राव ने एक रिपोर्ट प्रदान की । ★
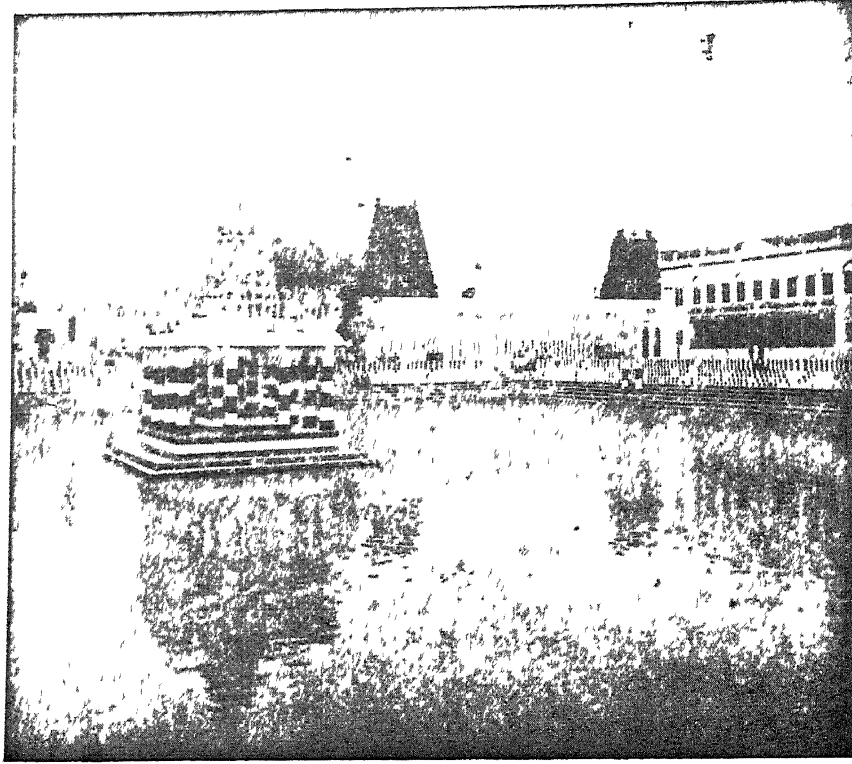
श्रीपद्मावती देवी का मंदिर, तिरुचानूर.

।। दैनिक कार्यक्रम ।।

प्रात	5–00	बजे से	5–30	बजे तक	..	सुप्रभात
,,	5–30	,,	6–00	,,		सहस्रनामार्चना
,,	6–00	,,	6–30	,,	...	पहली घंटी
,,	6–30	,,	9–00	,,		सर्वदर्शन
,,	9–00	,,	11–00	,,	.	अर्चना (अष्टोत्तर)
,,	11–00	,,	1–00	,,		सर्वदर्शन
मध्याह्न	1–00	,,	1–30	,,		दूसरी घण्टी
,,	1–30	,,	4–00	,,		सर्वदर्शन
शाम	4–00	,,	6–00	,,		दूसरी अर्चना (अष्टोत्तर)
रात	6–00	,,	7–00	,,	.	सर्वदर्शन
,,	7–00	,,	7–30	,,	....	तीसरी घंटी
,,	7–30	,,	8–45	,,		सर्वदर्शन
,,	8–45	,,	9–00	,,	....	एकातसेवा।

शुक्रवार के दिनों में

सुब:	11–00	,,	12–00	,,	.	सर्डलिपु
मध्याह्न	12–00	,,	1–00	,,		देवी का अभिषेक
,,	1–00	,,	2–00	,,	...	समर्पण तथा दूसरी घटी

(१) सहस्रनामार्चन टिकेट की दर — रु. 6-40. एक टिकेट से चार व्यक्ति प्रवेश पा सकते हैं ।
(२) अष्टोत्तरनामार्चन टिकेट की दर — रु 1 – 15 एक टिकेट से चार व्यक्ति प्रवेश पा सकते हैं ।
(३) सर्वदर्शन के समय एक आरती टिकेट की दर — 0–40 पै । इस सूचना के द्वारा यात्रियों को बताया जाता है कि रु 13–12 से बढकर जो भेंट भगवान को समर्पण किया जाता है वह देवस्थान में पहुँच जाता है । इस तरह भेंटों को समर्पण करने की इच्छा रखने वाले आफीस में पैसा अदा करके रसीद भी पा सकते हैं ।

मासिक राशिफल

फरवरी १९७९

*डा० डी. अर्कसोमयाजी, तिरुपति.

मेष

(आश्वनी, भरणी, कृत्तिका केवल पाद–१)

राहु से भय। शनि से धन-नष्ट, झगडे अथव सतान से विच्छिन्नता। गुरु के कारण सगे-सबधियो से भयादोलन। शुक्र से धन तथा नूतन वस्त्र-प्राप्ति, प्रेम-व्यवहार अथवा धार्मिक व्यवहार का विकास। सूर्य तथा कुज से विजय तथा धन-प्राप्ति, स्वास्थ्य लाभ अथवा पदोन्नति। बुध से धन-प्राप्ति, शत्रुता पर विजय, वाहन अथवा सतान-प्राप्ति।

वृषभ

(कृत्तिका पाद-२, ३, ४, रोहिणी, मृगशिरा पाद-१,२)

राहु से झगडे। शनि से धन नष्ट अथवा सगे-सबधियो से विच्छिन्नता। गुरु से पराजय। शुक्र से नूतन वस्त्र अथवा गृह प्राप्ति या प्रेम-व्यवहार। कुज से ता० १६ तक धन नष्ट, दीनता और बाद मे सपदा तथा विजय की वृद्धि। महीने के पूर्व भाग मे सूर्य से अस्वस्थता, धन-नष्ट, अथवा प्रयत्नो मे विघ्न, मगर उस के बाद विजय प्राप्ति। बुध से ता० ११ तक कार्य सफलता मे अवरोध मगर उस के बाद विजय, धन-प्राप्ति।

मिथुन

(मृगशिरा पाद-३, ४, आर्द्रा, पुनर्वसु पाद-१,२,३)

राहु से धन लाभ। शनि से धन, सेवक, तथा वाहन-प्राप्ति घरेलू सतोष तथा स्वास्थ्य लाभ। गुरु से भी विजय तथा धन-प्राप्ति और शत्रुता पर विजय। शुक्र से स्त्रियो के द्वारा भय। सूर्य से महीने के दूसरे भाग मे अस्वस्थता, धन नष्ट, पराजय। कुज से महीने के पूर्वार्द्ध मे धन-नष्ट, शरीर की हानि अथवा दीनता, बाद मे धननष्ट अथवा दीनता। बुध से ता० ११ तक धन, नूतन वस्त्र अथवा सतान प्राप्ति और बाद मे कार्यो मे विफलता।

कर्काटक

(पुनर्वसु पाद-४, पुष्य तथा आश्लेष)

राहु से धन-नष्ट। शनि से धन का दुर्व्यय तथा असतोष। गुरु से झगडे, धन-नष्ट। शुक्र से पराजय, अथवा अस्वस्थता। कुज से ता० १९ तक पत्नी से झगडे अथवा नेत्र या उदर पीडा और उस के बाद धन नष्ट और यशोवृद्धि। सूर्य से महीने के पूर्वार्द्ध मे प्रयाण तथा उदर पीडा और बाद मे अस्वस्थता तथा पत्नी का असतोष। बुध से पहले ११ दिनो तक झगडे मगर बाद मे धन, विजय, नूतन वस्त्र अथवा सतान-प्राप्ति।

सिंह

(उत्तर फल्गुनि पाद-१, मख, पूर्व फल्गुनि)

राहु से भय। शनि से शरीर-हानि, सगे-सबधियो से विच्छिन्नता, प्रयाण तथा प्रयास अथवा धननष्ट या पुत्रो से झगडे। गुरु से प्रयाण तथा प्रयास। शुक्र से प्रिय जनो का आगमन, बडो से अभिनदन, धन-प्राप्ति अथवा सतान या मित्र-प्राप्ति। सूर्य से महीने के पहले भाग मे स्वास्थ्य लाभ, शत्रुता पर विजय और बाद मे प्रयाण या उदर पीडा। पहले १६ दिनो मे कुज से विजय, धन प्राप्ति, मगर बाद मे पत्नी से झगडे अथवा उदर या नेत्र-पीडा। पहले ११ दिनो मे बुध से विजय, पदोन्नति और बाद मे झगडे।

कन्या

(उत्तरा पाद-२,३,४, हस्त, चित्त पाद-१, २)

राहु से धन-नष्ट। शनि से भय। गुरु से धन प्राप्ति अथवा पदोन्नति। शुक्र से अच्छे मित्रो की प्राप्ति। महीने के पूर्वार्द्ध मे अस्वस्थता अथवा शत्रुओ से कष्ट। कुज से ता० १९ तक सतान के प्रति भय, अस्वस्थता, शत्रुओ से नष्ट मगर बाद मे विजय, धन-प्राप्ति शत्रुता, पर विजय। पहले ११ दिनो तक बुध के द्वारा पत्नी से झगडे और बाद मे विजय तथा पदोन्नति।

तुला

(चित्त पाद-३, ४, स्वाति, विशाख पाद-१, २, ३)

राहु से सतोष। शनि से धन-प्राप्ति अथवा प्रेम-व्यवहार। गुरु से धन नष्ट अथवा बदनाम। शुक्र से यशोवृद्धि, धन-प्राप्ति अथवा नूतन वस्त्र-प्राप्ति। महीने के पूर्वार्द मे सूर्य से अस्वस्थता और बाकी दिनो मे शत्रुओ से भय तथा अस्वस्थता। कुज से पहले १९ दिनो तक बुखार अथवा उदर पीडा या निष्ठुर लोगो से भय। बुध से पहले ११ दिनो तक घर मे अशाति और बाद मे घरेलू झगडे।

वृश्चिक

(विशाख पाद-४, अनुराधा, ज्येष्ठ)

राहु से झगडे। शनि से धन-नष्ट या झगडे। गुरु से विजय, धन, खाद्यान्न या सतान-प्राप्ति। शुक्र से धन, खाद्यान्न प्राप्ति और यशोवृद्धि। सूर्य से महीने के पूर्वार्द्ध मे धन प्राप्ति, शत्रुता पर विजय, और बाकी दिनो मे अस्वस्थता। कुज से पहले १८ दिनो तक

धन प्राप्ति और उस के बाद निष्ठुर लोगो अथवा अस्वस्थता मे भय । बुध से पहले ११ दिनों तक मित्र प्राप्ति और अपने बुरे चरित्र के कारण भय और बाद मे शांतिमय वातावरण ।

धनुः
(मूल, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ पाद-१)

राहु से अधार्मिक व्यवहार । शनि से अस्वस्थता और शत्रुओं के कारण भय, तथा अधार्मिक व्यवहार । गुरु से अस्वस्थता के कारण भय या प्रयाण तथा प्रयास । शुक्र से प्रेम व्यवहार । सूर्य से महीने के पूर्वार्द्ध में धन नष्ट, नेत्र पीडा या दूसरो से धोखा खाना और बाकी दिनो में धन प्राप्ति तथा गौरव - प्राप्ति । कुज से पहले ११ दिनो तक अस्वस्थता, अधिकारियो अथवा शत्रुओं के द्वारा भय और बाद मे धन तथा मित्र - प्राप्ति मगर अपने दुर्व्यवहार के कारण भय ।

मकर
(उत्तराषाढ पाद-२, ३, ४ श्रवण, धनिष्ठ पाद-१, २)

राहु से भय । शनि के द्वारा सगे - संबंधियो से विच्छिन्नता । गुरु से धन प्राप्ति तथा प्रेम - व्यवहार । शुक्र से धन तथा नूतन वस्त्र-प्राप्ति । सूय से महीने के पूर्वार्द्ध मे प्रयाण या अस्वस्थता या धन - नष्ट और बाद में धन - नष्ट, नेत्र पीडा या दूसरो से धोखा खाना । कुज से आधिकारिक भय अथवा अस्वस्थता । बुध के कारण बुरे उपदेश से धन - नष्ट और पहले ११ दिनो तक झगडे और बाद मे दीनता ।

कुंभ
(धनिष्ठ पाद-३,४, शतभिष, पूर्वाभाद्रा पाद-१, २, ३.)

राहु से झगडें । शनि से प्रयाण । गुरु से अशांति । शुक्र से धन तथा मित्र-प्राप्ति । सूर्य से धन - नष्ट अथवा अस्वस्थता । कुज से धन का दुर्व्यय, नेत्र पीडा अथवा पत्नी का असंतोष । बुध के कारण शत्रुओ, या अस्वस्थता से भय अथवा दीनता ।

मीन
(पूर्वाभाद्र पाद-४, उत्तराभाद्र, रेवती)

राहु से धन - प्राप्ति । शनि से विजय तथा स्वास्थ्य लाभ । गुरु से धन, नूतन वस्त्र, वाहन, घर या संतान - प्राप्ति । शुक्र से झगडे तथा बदनाम । सूर्य से महीने के पूर्वार्द्ध मे यशोवृद्धि या बिजय तथा स्वास्थ्य - लाभ और बाकी दिनो मे प्रयत्नो मे असफलता । कुज से पहले १९ दिनो तक विजय और उस के बाद अधिक खर्च और पत्नी का असंतोष । बुध से पहले ११ दिनो तक धन, मित्र या वाहन - प्राप्ति अथवा प्रेम - व्यवहार वा संतान प्राप्ति और बाद मे अस्वस्थता या दीनावस्था ।

ति. ति. दे. के न्यास मण्डल के प्रमुख निर्णय

१) तिरुमल पर एन. जी सी के पास स्पेशल डोनेशन स्कीम के अन्दर काटैजों के निर्माण कराने का निर्णय लिया गया ।

२) चित्रकोण्डा (उडीसा) के श्री बालाजी वेंकटरमण मन्दिर केलिए देवता-मूर्तियों को दान देने का निर्णय लिया गया ।

३) श्री कांचीपुरम् स्थित कामाक्षी देवी मन्दिर के सुवर्ण विमान के निर्माण केलिए 3 Kg सोना दान देने का निर्णय लिया गया ।

४) श्री महालसा नारायणी देवालय पुनरुद्धार समिति केलिए रु २५,००० मंजूर किये गये ।

५) विशाख पट्टनम् जिला के राघवेन्द्र नगर स्थित भगवान बालाजी के मन्दिर केलिए देवता-मूर्तियों को दान देने का निर्णय लिया गया ।

६) जिला-केन्द्रों, प्रांतों में तथा अन्य मुख्य शहरों में आडिटोरियो के निर्माण के खर्च में 1/4 भाग वहन करने का निर्णय लिया गया बशर्ते कि वह खर्च रु 25 लाख से अनधिक हो ।

७) मद्रास स्थित श्री वी वीरराघव रेड्डी धर्मशाला तथा उस की जायदाद देवस्थान के अधीन में आ गयी । यहाँ पर भगवान का मन्दिर, प्रार्थनालय, कल्याण मण्टपम, समाचार केन्द्र की स्थापना के विषयों को देवस्थान के कार्यनिर्वहणाधिकारी परिशीलन करेंगे ।

८) सरकार की सलाह के अनुसार कृष्णा तथा गुन्टूर जिलाओं के तूफान पीडित गांवों में निराश्रितों केलिए गृहो के निर्माण कराने का निर्णय लिया गया ।

९) वयोलिन तथा कंठ संगीत में अस्थान विद्वानों को नियुक्त करने का निर्णय लिया गया ।

१०) पश्चिम गोदावरी जिले के विविध हरिजनवाडों में श्री राममन्दिरों के निर्माणार्थ हर एक मन्दिर केलिए रु. १०,००० मंजूर किये गये ।

११) मन्दिरों के पुनरुद्धार केलिए रु १५,००० से अनधिक रकम मंजूर करने का निर्णय लिया गया ।

EDITED AND PUBLISHED ON BEHALF OF THE T. T. DEVASTHANAMS BY K. SUBBA RAO, M A AND PRINTED AT
T T D. Press, By M. Vijayakumar Reddy, Manager, T. T. D Press, Tirupati

ति. ति. देवस्थान के विविध - मन्दिरों में अर्जित सेवाओं की दरें तथा कुछ नियम निम्नलिखित रूप से परिवर्तित की गयीं।

श्री पद्मावती देवी का मन्दिर, तिरुचानूर.

अर्चना	रु १–००
आरती	रु ०–५०

श्री गोविन्दराज स्वामी मन्दिर, तिरुपति.

तोमाल सेवा	रु ४–०० (एक टिकट)
अर्चना	रु ४–०० ,,
एकांतसेवा	रु ४–०० ,,
विशेष दर्शन	रु २–०० ,,

श्री बालाजी का मन्दिर, तिरुमल.

तिरुमल पर विराजमान श्री बालाजी के मन्दिर में अब तक रु २००/- चुकाकर मनानेवाली आर्जित सेवा में भाग लेने केलिए ६ व्यक्तियों को प्रवेश है। अब से केवल ५ व्यक्तियों को ही प्रवेश दे देने का निर्णय लिया गया।

ति. ति. देवस्थान, तिरुपति.

श्री कोदण्डराम स्वामीजी का ब्रह्मोत्सव, तिरुपति.

दिनांक	वार	प्रात·	रात
२५–३–७९	रवि	—	अंकुरार्पण - श्री सेनाधिपति के उत्सव
२६–३–७९	सोम	तिरुच्चि उत्सव, ध्वजारोहण	बडा शेषवाहन
२७–३–७९	मंगल	छोटा शेषवाहन	हंसवाहन
२८–३–७९	बुध	मोती के शामियाने का वाहन	सिंहवाहन
२९–३–७९	गुरु	कल्पवृक्षवाहन	सर्वभूपालवाहन
३०–३–७९	शुक्र	पालकी उत्सव	गरुडोत्सव
३१–३–७९	शनि	हनुमन्तवाहन शाम को वसंतोत्सव	गजवाहन
१–४–७९	रवि	सूर्यप्रभावाहन	चन्द्रप्रभावाहन
२–४–७९	सोम	रथोत्सव	अश्ववाहन
३–४–७९	मंगल	१· पालकी उत्सव— २· तिरुच्चि उत्सव	ध्वजावरोहण